J.V.R. GOVERNMENT COLLEGE.

SATHUPALLY, KHAMMAM DT. TS.

Affiliated to Kakatiya University, Warangal, TS.

Accredited with B Grade by NAAC.

BOOKS AND CHAPTERS EDITED

IN THE JVRGC, SATHUPALLY DURING THE PERIOD

2016-17 TO 2020-21

Books and chapters edited

in

2017-18

01 book

Books and chapters edited in 2017-18

मूल्य -1895/-

पुस्तक	:	भारतीय भाषा और साहित्य चिन्तन
सं. मण्डल	:	डॉ. अंबादास देशमुख, डॉ. रणजीत जाधव, डॉ. सतीश यादव, डॉ. दिलीप गुंजरगे, प्रा. राजेश विभूते
प्रकाशक	:	शैलजा प्रकाशन 57- पी, कुंज विहार-II, यशोदा नगर, कानपुर-2080 11
फोन नं.	:	0512-2633004, 9451022125
Email	:	shailjaprakashan@gmail.com
संस्करण	:	प्रथम 2017
शब्द सज्जा	:	शिखा ग्राफिक्स, कानपुर
मुद्रक	:	पूजा प्रिंटर्स
ISBN	:	978-93-80788-65-4

Scanned with CamScanner

हिन्दी और तेलुगु में उपन्यास का पारिभाषिक स्वरूप

- टी. सुमती,

आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास का सबसे अधिक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। लेकिन उपन्यास में लिखी हुई मानव जीवन की समस्याओं या सुख–दुःखों को आधार बनाकर परिभाषा दे सकते हैं।

हिन्दी साहित्यकारों ने उपन्यास के बारे में अपने–अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। इनमें उपन्यास सम्राट 'प्रेमचन्द' के अनुसार, 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।' (हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक) 'श्याम सुन्दर दास' के अनुसार, 'उपन्यास की कोटि में साधारणतः कल्पना प्रसूत वह सम्पूर्ण कथा साहित्य आ जाता है, जो गद्य की रीति से व्यक्त किया गया है।' (हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास) 'सीताराम चतुर्वेदी' ने उपन्यास के बारे में लिखा है कि– 'जिसमें विशेष कौशल से कौतूहल उत्पन्न करके कोई ऐसी सत्य या कल्पित कथा कही जाती है, जिसमें मनोविनोद होता हो या किसी विशय या नीति का परिचय और प्रचार किया जाता है।' (हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – डॉ. मफत पटेल) 'बाबू गुलाबराय' के अनुसार, 'उपन्यास कार्य – कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य – कथानक, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक–काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव–जीवन के सत्य का रसात्मक ढंग से उद्‌घाटन किया जाता है।' (साहित्य और आलोचना) 'डॉ. भगीरथ मिश्र' की दृश्टि में 'युग को गतिशील की पृश्ठभूमि पर सहज शैली स्वभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य–काव्य उपन्यास है।' 'डॉ. गोपाल सिंह' के अनुसार, 'शब्द कलाओं में उपन्यास ही एक ऐसी कला है, जिसमें जीवन की प्रत्येक समस्या की पूरी–पूरी खोज की जा सकती है।' (हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – डॉ. मफत पटेल) जैनेन्द्र कुमार के अनुसार, 'मेरे खयाल में न व्यक्ति चाहिए, न टाइप। न नीति चाहिए, न राजनीति, न सुधार, न स्वराज। उससे तो प्रेम की सघन व्यथा की माँग ही हो सकती है, और वह प्रेम इसमें या उसमें नहीं है, बल्कि इस–उसकी परस्परता ही में हैं।' (हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – डॉ. मफत पटेल)

Scanned with CamScanner

आंध्र साहित्य में 'उपन्यास' की उत्पत्ति तथा विकास के दो मूलभूत कारण माने गये हैं। कथा आख्यायिका, गद्य प्रबंध आदि भारतीय रचना रूपों के नाम रूप गुणों से सम्पन्न होते हुए वह 'नावेल' नामक पाश्चात्य रचना–विधान के नाम–रूप–गुणों से भी सर्वाद्धत है। तेलुगु के कुछ उल्लेखनीय उपन्यास आज भी 'आख्यायिका' कहलाते हैं। स्वामी वीरेशलिंगम ने अपने उपन्यास को गद्य–प्रबंध कहा है। अंग्रेजी 'नावेल' के रूपान्तर के रूप में 'नवल' शब्द भी प्रचलित हो गया है। अतः आंध्र भाषा के उपन्यास साहित्य को प्राच्य–पाश्चात्य लक्षणों का मणि–कांचन–संयोग कहना सुसंगत है।

संस्कृत में 'आख्यायिका' का अर्थ है ऐतिहासिक कथा। कथा का अर्थ उत्पाद्य इतिवृत्ति है, आज के हमारे उपन्यास सा। इसलिए प्राच्य प्रभाव की दृष्टि से देखें तो उसी कथा को आज के उपन्यास का मूल मानना चाहिए। आंध्र वाङ्मय में तो 'नवल' शब्द के प्रयोग पर विचार कर उसकी परिभाशा निश्चित करना और भी कठिन है मोटे तौर पर अंग्रेजी के 'नावेल' की परिभाशा के अंतर्गत आने वाले कथा–साहित्य के अर्थ में ही 'नवल' शब्द प्रचार में लाया गया था। किन्तु कुछ विद्वान उसे 'चित्र कथाख्यान' भी कहते रहे। उपन्यास की कथावस्तु पूर्णतः यथार्थ भी न हो तो भी पूर्णतः कल्पित नहीं होती। अयथार्थ होने पर भी वह यथार्थ की भ्रांति कराने वाला अयथार्थ ही है। यही इसकी कथावस्तु की विलक्षणता है, इसलिए इसे 'चित्रकथाख्यान' कहना समुचित ही है। कुछ लोगों ने इसे 'कल्पित कथा भी कहा है। किन्तु सूक्ष्मता से विचार करने पर लगता है कि यह नाम भ्रामक है। हम जिन वायुयानों को आज आधुनिक मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में पुश्पक आदि नामों से उनका उल्लेख मिलता है। उसी प्रकार आज जलान्तर गामिनि (पनडुब्बियों) के आविश्कार से पहले ही एच.जी. वेल्स महाशय उसकी कल्पना कर, अपने कथा–साहित्य में उनका उल्लेख किया।

'पोडवटिगंटि कुटुंबाराव' के अनुसार, 'एक ही घटना का चित्रण, एक जीवन अंश का चित्रण ही उपन्यास है। आंज के उपन्यासों को छोड़ कहानी का पूर्व स्वरूपों का इतिहास ही उपन्यास (उपाख्यान) है।'

पाश्चात्य मत–'हेनरी जेम्स' के अनुसार, 'उपन्यास अपनी विस्तृत परिभाशा में व्यक्तिगत की सीधी छाप है।' ए. एम. फारस्टर ने कहा है कि– 'जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्ति करने की विशेशता जितनी उपन्यास में है, उतनी अन्य किसी कला में नहीं।' 'शिपले' के अनुसार, 'उपन्यास एक कल्पित कथानक से युक्त दीर्घकथा होती है। जिसके पात्रों का चयन यथार्थ जीवन से किया जाता है।' 'वॉल्टर एलन' ने उपन्यास की एक और परिभाशा बताई हैं। वे लिखते हैं कि 'उपन्यास की परिभाशा देने का प्रयत्न नहीं करूँगा क्योंकि जिस कार्य में प्रत्येक आलोचक असफल रहा है, वहाँ यह अनहोनी–सी बात होगी कि मैं सफल होऊँगा। वे परिभाशा के रूप में केवल यह मानकर चलते हैं कि उपन्यास मुख्यतः लोगों के विशय में ही होते हैं।'

Scanned with CamScanner

Books and chapters edited

in

2016-17

06

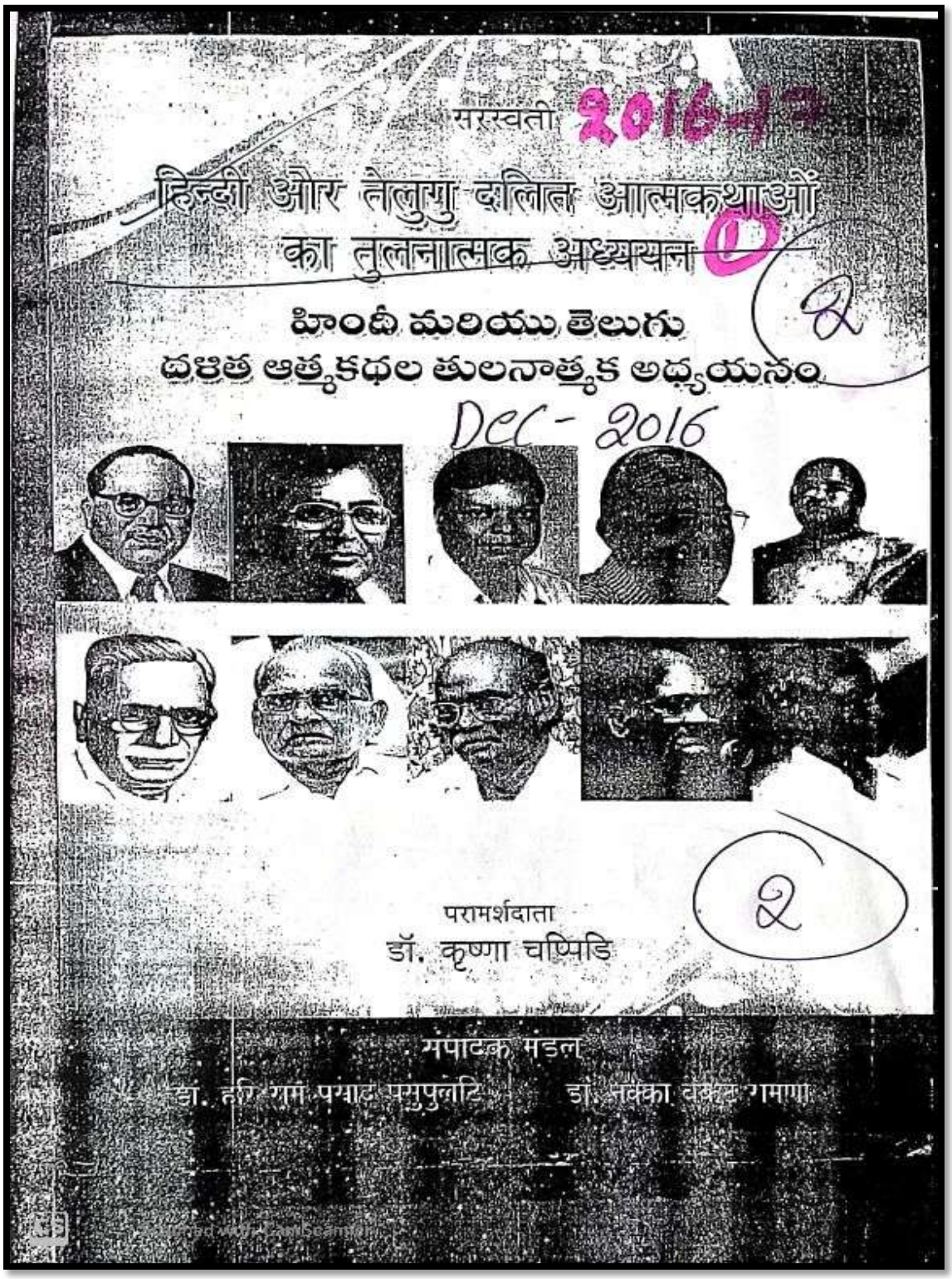
सरस्वती
2016-17
हिन्दी और तेलुगु दलित आत्मकथाओं
का तुलनात्मक अध्ययन
హిందీ మరియు తెలుగు
దళిత ఆత్మకథల తులనాత్మక అధ్యయనం
DEC - 2016
परामर्शदाता
डॉ. कृष्णा चप्पिडि
संपादक मंडल
डा. हरि राम पंचाल पसुपुलेटि
डा. नर्वका वेंकट रामणा

2

हिन्दी और तेलुगु दलित आत्मकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन

హిందీ మరియు తెలుగు దళిత ఆత్మకథల తులనాత్మక అధ్యయనం

मूल्य : रू. 650/-

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN No. 978-81-921270-4-0

Published by :

Arun Keerthi Publishers,

Amalapuram, Andhra Pradesh, INDIA

Printed by:

Tirumala Publications,

Ramasomayajulu Street,

Suryaraopet, Kakinada.

Ph : 0884-2343454, Cell : 99485 98966

Scanned with CamScanner

दलित विमर्श के विविध आयाम

समाज का विकास द्वंद्वात्मक है इसलिए वर्ग संघर्ष हर समाज, हर काल में विद्यमान रहा है। व्यक्ति से लेकर देश तक हर स्तर पर प्रतिद्वंद्विता मानव समाज की स्वाभाविक प्रक्रिया है। किंतु भारत में इसका स्वरूप कुछ अलग रहा है। यहाँ कर्म के आधार पर निर्धारित वर्ग विभेद ने कालांतर में जाति का रूप ले लिया। जातियाँ से उपजातियाँ केले के तने के छिलकों की तरह बनती चली गई तथा जाति नियम इतने कठोर होते चले गए कि व्यक्ति के लिए अपनी जन्मजात जाति को बदला पूर्णतः असंभव हो गया। इस परिप्रेक्ष्य में दलित समाज की उत्पत्ति विभिन्न कालों में उनकी स्थिति व दलित उत्थान की दिशा में विभिन्न समाज सुधारकों के मतों की चर्चा यहाँ अपेक्षित है।

दलित समाज की उत्पत्ति एवं सामाजिक संरचना में अस्पृश्य जातियाँ : भारत में दलित समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ इस संबंध में डॉ. भीमराव अंबेडकार की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक "भारत में जाति प्रथा : संरचना, उत्पत्त और विकास" उल्लेखनीय है। अंबेडकर ने वर्ण और जात विषयक अन्य देशी, विदेशी विद्वानों की मान्यताओं का तर्कपूर्यक खंडन करके जाति की उत्पत्ति का नया सिद्धांत प्रतिपादित किया। उनके अनुसार निश्चित तौर पर कोई समाज सर्वथवा वर्गों से मिलकर बनता है और वर्ग आर्थिक या सामाजिक हो सकते हैं।

लेकर यह निश्विाद सच है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वर्ग का सदस्य जरूर होता है। आगे उन्होंने अपनी बातों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "वर्ग और जाति एक दूसरे के दो रूप होते हैं, मगर जाति अपने को सजातीय परिधि में रखने की वर्ग बन जाती है।" (तेज सिंह – अंबेडकर वादी साहित्य का समाजशास्त्र, पहल 84, पृष्ठ 72) "

नव जागरण और स्वतंत्रता आंदोलन : दलित विमर्श (1) राजा राममोहन राय एवं समाज : भक्ति आंदोलन से जगी सामाजिक चेतना बदली हुई सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक परिस्थितियों में धीरे–धीरे मंद पड़ गई तथा भारतवर्ष पुनः उसी राह पर चल जो जातिगत भेदभाव और छुआछूत की दिशा मं जाती थी। कालांतर में अंग्रेजी राज

Scanned with CamScanner

शिक्षा की हवा चली तो पुनः नवजागरण का सूत्रपात हुआ। ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज रूढ़ियाद पर चोट की और समाज सुधार का वातावरण तैयार किया। राजा राममोहन राय और महर्षि दयानंद सरस्वती ने वर्गभेद और वर्णभेद मिटाकर हिंदू समाज को संगठित होने का आह्वान किया। "बंधनों के विध्वंस और नवनिर्माण का साहस भारतीय मध्यम वर्ग में कभी नहीं रहा और राज राममोहन राय ने ऐसे ही नव जागरण की नींव डाली थी। वह अंग्रेज परस्त थे और उनकी मदद से भारतीय समाज में सुधार करना चाहते थे।" (लाल बहादुर वर्मा– इतिहास में न होने का मतलब दलित नजरिया, भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, पृ. सं. 73) [2]

आर्य समाज ने भंगी बस्तियों में शिक्षा प्रसार के लिए विद्यालयों एवं मंदिरों की स्थापना की। अंतर्जातीय विवाहों को आर्य पद्धति से विवाह करवा कर समाज में मान्यता दिलवाई धार्मिक कर्मकांड, छुआछुत, सती प्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध तथा विधवा विवाह, जाति रहित समाज, स्त्री शिक्षा विषयक सुधारों का समर्थन किया।

(2) महात्मा गाँधी : "कार्ल मार्क्स की भाषा का 'साक्षात सर्वहारा' एवं गांधी जी की भाषा का साक्षात 'हरिजन' हरि अर्थात ईश्वर के भरोसे पर पैदा हुआ–शूद्र समाज। हरिजन यह नाम महात्मा गाँधी ने दलितों को दिया था।" (एस.एल. शाह–भारत में जाति एवं वर्ण व्यवस्था, कब, क्यों और कैसे? पृ. सं. 133) [3] नागर जी ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में कहा भी है– "गांधी अपनी कथनी और करनी को एक करने के लिए कसरत करता था।" (अमृतलाल नागर–नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ. सं. 30)

'अछूतोद्धार' कार्यक्रम की नेक नीयती पर अथवा गांधी जी के विचारों पर संदेह करना सर्वथा अनुचित होगा, किंतु गांधी जी अछूतों के उद्धार के पक्षधर होते हुए भी वर्ण व्यवस्था के पूर्णतः विरोधी नहीं थे– "दूसरे शब्दों में कहना हो तो महात्मा गाँधी ने इस सामाजिक समस्या को अग्रस्थान नहीं दिया और यह भी सच है कि उन्होंने 'सर्वधर्म–समभाव' के नाम पर वर्ण व्यवस्था को सुरक्षित रखा था। ....आगे चलकर वे कहते थे कि अछूत वर्ग हिंदू जमात

Scanned with CamScanner

का ही एक तबका है।" (सदा कन्हाड़े–मार्क्सवाद और दलित साहित्य, भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य, पृ. सं. 46) [4]

(3) डॉ. भीमराव अंबेडकर : डॉ. भीराव अंबेडकर दलितों के मसीहा कहे जाते हैं। महात्मा ज्योतिबा फुले को गुरू मानते हुए उन्होंने दलित उद्धार आंदोलन में एक नई सोच और नई दिशा की नींव रखी।

डॉ. अंबेडकर की मान्यता थी कि जाति समस्या या अछूत समस्या का निर्मूलन, वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने से ही हो सकता है। इसी सिद्धांत के कारण उनके महात्मा गांधी तथा साम्यवाद से मतभेद थे। उनकी अपनी धारणा थी। भारतीय समाज व्यवस्था का मूल आधार वर्गभेद नहीं बल्कि वर्णभेद है। "हिंदू समाज नामक कोई वस्तु नहीं है, बल्कि यह अनेक जातियों का समवेत रूप है। इसलिए डॉ. अंबेडकर ने ब्राह्मणवाद के आधार पर निर्मित जाति शास्त्र के विखंडन पर ज्यादा जोर दिया है ताकि एक नए समाज का निर्माण किया जा सके।" (तेजसिंह–अंबेडकर वादी साहित्य का समाज शास्त्र, पृ. सं. 76) [5]

डॉ. भीराव अंबेडकर का संघर्ष दिवमुखी था। एक ओर उन्हें कांग्रेस में नेतृत्व पर काबिज उच्च वर्ण के नेताओं का सामना करना था तथा दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के कानून के शासन सिंद्धांत में दलितों के हितों की लड़ाई लड़नी थी। प्रायः उन्हें ब्रिटिश सरकार का समर्थक भी कहा जाता है। लेकिन इसके पीछे उनका सपना एक तर्क था। जिस प्रकार महात्मा फुले ब्रिटिश शासनतंत्र में दलितों के हित में प्रजातंत्र ढूंढ़ते थे, उसी तरह अंबेडकर भी ब्रिटिश शासन तंत्र में दलितों, उत्पृश्यों की समस्याओं की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देखते थे। जबकि हिंदू धर्म कठोर वर्णव्यवस्था नियमों में यह संभव नहीं था। वस्तुतः "दो संघर्षशील राजनीति शक्तियों के बाहर खड़े रहकर डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर जकड़ कर रखी गई दलित जनता के बंधन तोड़ रहे थे। संघर्ष कर रहे थे।" (बाबूराव बागुल–दलित साहित्य उद्देश्य और वैचारिकता, भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य पृ. सं. 34) [6]

Scanned with CamScanner

डॉ. अंबेडकर दलितों को शिक्षित होने की प्रेरणा देते थे। प्रेरणा स्वरूप उनके तीन नारे थे– शिक्षित हो, संगठित हो एवं संघर्ष करो। उन्होंने अपने समाज को स्वाभिमान, स्वावलंबन और स्वोद्धार की प्रेरणा देते हुए शिक्षा, संगठन और संघर्ष का मार्ग दिखाया। वे मानते थे– "गुलामों को बार बार उनकी दासता याद दिलाने से ही वे दासता के विरूद्ध बगावत करने के लिए उठते है।" (वहीं, पृ. सं. 55) [7] इन परिवर्तनकारी विचारों के परिणामस्वरूप सन् 1927 में अंबेडकर के नेतृत्व में 'दलित मुक्ति आंदोलन' प्रारंभ हुआ।

डॉ. अंबेडकर की धारणा थी कि पूँजीवादी व्यवस्था एवं मनुवादी व्यवस्था में बहुत समानता है। जिस प्रकार पूँजीवाद अमीर–गरीब में वैमनस्य बढ़ाकर वर्ग संघर्ष को बढ़ावा देता है, उसी प्रकार मनुवादी व्यवस्था भी मुठ्ठी भर लोगों को प्रभावी बनाकर बहुजन समाज को पशुवत जीवन जीने के लिए विवश करती है, आर्थिक स्तर पर समृद्ध बनने में बाधा उत्पन्न करती है। "डॉ. अंबेडकर ने दलितों के बहुमुखी दलित को दूर करने के अनेक रास्ते सुझाए। अब ये चलने वालों पर ही है कि वे उन पर कितनी दूर और कैसे चलते हैं।" (रजत रानी मीनू–दलित चेतना सोच, भारतीय दलित साहित्य : परिप्रेक्ष्य पृ. सं. 11) [8] उनमें से एक रास्ता था स्वयं को आर्थिक रूप से सबल बनाया। बेगारी का विरोध करना अपने कार्य या सेवा का उचित मूल्य लेना। आज के संदर्भ में यह सत्य भी है कि आर्थिक रूप से सबल व्यक्ति की ही समाज में पूछ हैं। अर्थिक तथा शैक्षिक रूप से सबले दलित अपने समाज के उत्थान के लिए सकारात्मक सहयोग दे सकता है।

डॉ. टी. सुमती,
असिस्टेंट प्रोफेसार (हिन्दी)
जे. वी. आर सरकारी डिग्री कालेज,
सत्तुपल्लि, कम्मक जिला,
तेलंगाण (राज्य)
दूर भाषा – 09515125830

Scanned with CamScanner

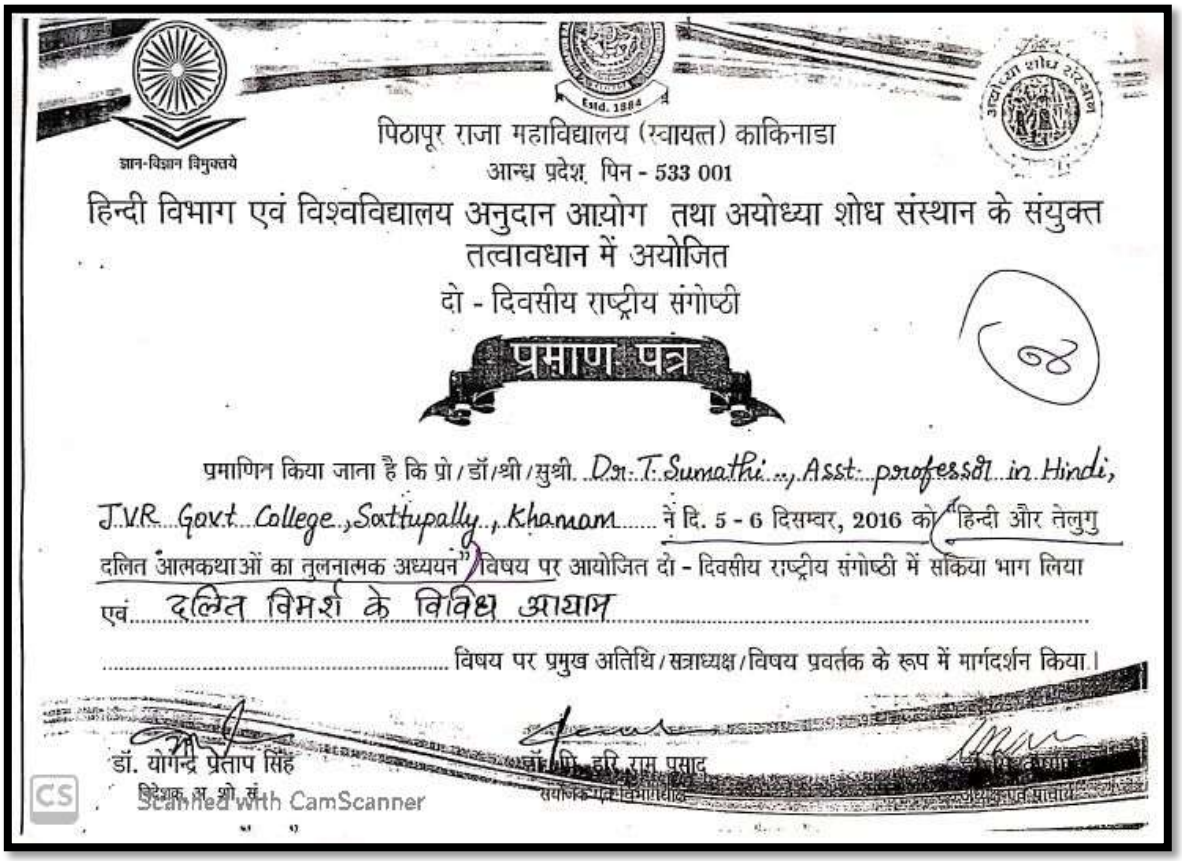

पिठापूर राजा महाविद्यालय (स्वायत्त) काकिनाडा

आन्ध्र प्रदेश. पिन - 533 001

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

हिन्दी विभाग एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अयोध्या शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में अयोजित

दो - दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रमाण पत्र

(८)

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो / डॉ / श्री / सुश्री. Dr. T. Sumathi ..., Asst. professor in Hindi, JVR Govt College, Sattupally, Khamam ..... ने दि. 5 - 6 दिसम्बर, 2016 को "हिन्दी और तेलुगु दलित आत्मकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर आयोजित दो - दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सक्रिय भाग लिया एवं दलित विमर्श के विविध आयाम

..... विषय पर प्रमुख अतिथि / सत्राध्यक्ष / विषय प्रवर्तक के रूप में मार्गदर्शन किया।

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक, अ. शो. सं.

डॉ. पी. हरि राम प्रसाद
सयोजक एवं विभागाध्यक्ष

प्राचार्य

Scanned with CamScanner

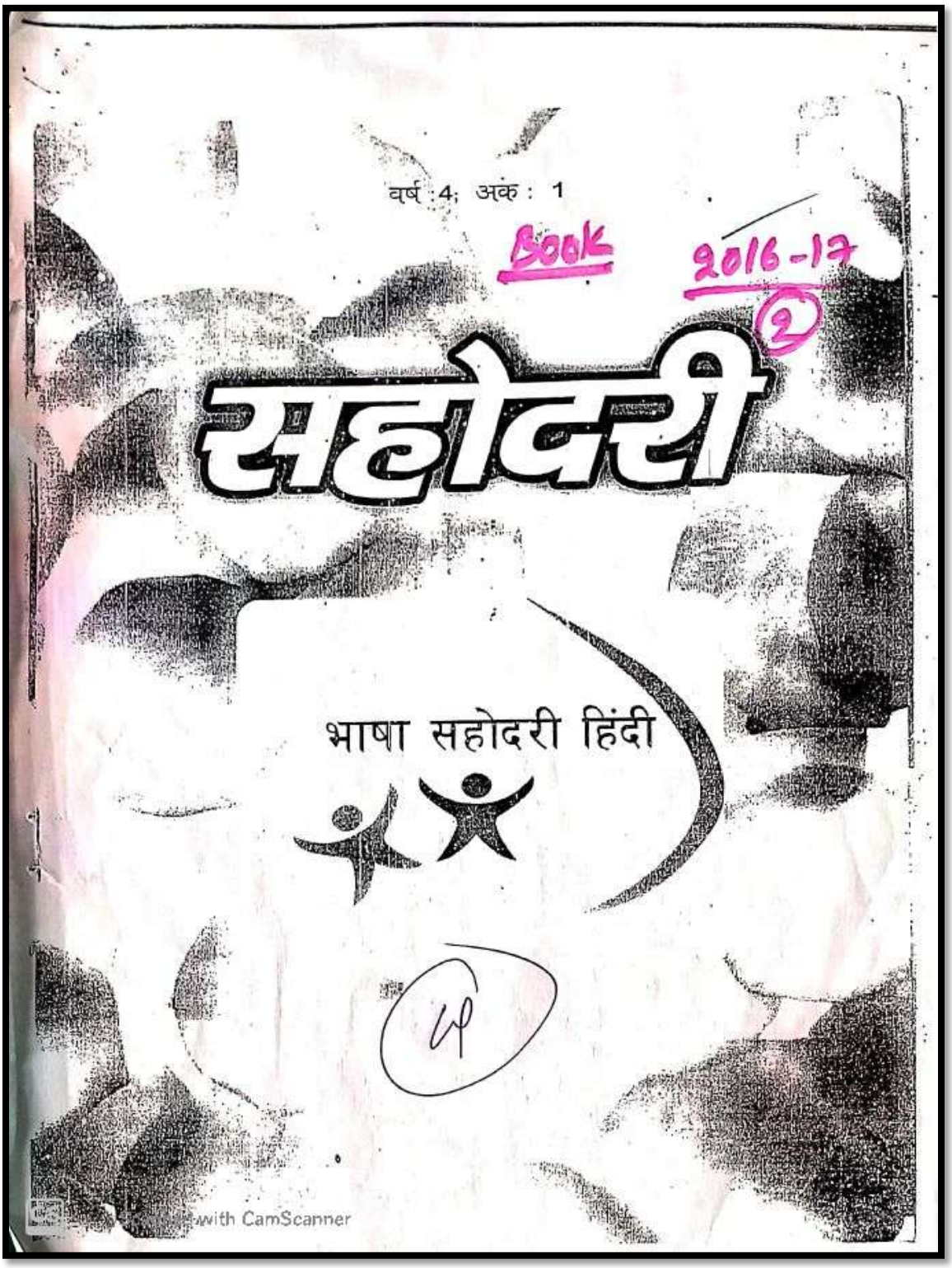
वर्ष : 4; अंक : 1
Book
2016-17
सहोदरी
भाषा सहोदरी हिंदी
with CamScanner

वर्ष : 4 अंक : 1 जनवरी, 2017

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक
भाषा सहोदरी-हिन्दी©
कार्यालयः
बी-36-बी, अप्पर ग्राउंड, अनला गार्डन
(दुर्गा मंदिर के सामने) नजदीक दिल्ली पुलिस सोसाइटी,
मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091
मोबाइलः 9811912311, 9599303676
e-mail : sahodaribhasha@gmail.com
वेबसाईटः bhashasahodarihindi.org

मूल्यः ₹ 100

वार्षिक सदस्यता शुल्क

सदस्य	:	1000 रुपये
कार्यकारिणी सदस्य	:	2000 रुपये
संरक्षक सदस्य	:	5000 रुपये

शुल्क जमा करने का विवरणः

संस्था का नामः भाषा सहोदरी हिंदी
बैंक का नामः कैनरा बैंक
बैंक खाता संख्याः 2801101009560
आई.एफ.एस.सी. कोडः CNRB0002801
शाखाः मयूर विहार, फेज-1, नई दिल्ली

नोट :

पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संगादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

भाषा-सहोदरी हिन्दी©

मुख्य संयोजक एवम् प्रबंध संपादक
जय कान्त मिश्रा

संपादक
डॉ. उषा रानी राव

उप-संपादक
प्रो. लता चौहान

महा सचिव
पंकज कुमार
चन्द्र कान्ता सिवाल

मुख्य कार्यकर्ता
सुमित्रा कुमारी बुरानियाँ
अमित कुमार वर्मा
ताजवर वानो
सि-रन अरोड़ा
राखी
संगीता
अंकित यादव
शशि भूषण
विशाल पांडेय

संपूर्ण भारत में अगर हिन्दी को स्थापित करना है, तो न्यायपालिक कार्यपालिका, विधायिका में संपूर्ण स्थान हिन्दी को मिलना चाहि

किसी संस्था को खड़ा करने और आगे बढ़ाने में कई सधे हुए हा और अनुभवी लोगों की आवश्यकता होती है। अतः न्यास की ओ से हम सभी वरिष्ठ साहित्यकारों, विद्वानों और लेखकों से अनुरो करते हैं कि वो अपने अमूल्य सुझावों से हमें लाभान्वित करते ताकि न्यास अपने निहित उद्देश्यों के साथ आगे बढ़ सके।

Scanned with CamScanner

न्यायालयों में हिंदी कार्रवाई की सार्थकता

डॉ. टी. सुमती
असिस्टेंट प्रोफेसार (हिन्दी)
जे. बी. आर सरकारी डिग्री कालेज,
सतुपल्लि, कम्मम जिला,
तेलंगाण (राज्य)
दूरभाष: 09515125830

न्याय की संकल्पना मानव के विकास का वह आयाम है, जिससे वह मानवता की ओर अग्रसर होता है, अर्थात् मानवीय विकास का उच्चतम शिखर। न्याय का सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार हो? यदि वह व्यवहार उचित नहीं है तो किसी तीसरे व्यक्ति को यह तय करने का अधिकार होगा कि वह व्यवहार का विवेचन कर यह तय करे कि कथित व्यवहार उचित था या नहीं? यदि नहीं प्रश्न का उत्तर है तो वहीं से न्यायिक प्रक्रिया का आरंभ होता है।

प्रारंभिक अवस्था में कानून का उदय सामाजिक मर्यादाओं, परंपराओं एवं लोक-व्यवहार के आधार पर ही हुआ था। आज भी जो समाज अपनी परंपराओं एवं सामाजिक व्यवहार के प्रति अत्यंत संवेदनशील है, अलिखित संविधान के माध्यम से देश का संचालन करता है। जहाँ परंपराओं की जड़ें उतनी गहरी नहीं थीं, वहाँ लिखित संविधान की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। वहीं से कानून का उदय हुआ।

सामाजिक सरोकार का सबसे बड़ा माध्यम भाषा है। यदि भाषा न हो तो लोक-व्यवहार को संचालित करना असंभव तो नहीं, किंतु कठिन अवश्य हो जाएगा। सामाजिक अन्योन्याश्रितता के कारण भाषा संप्रेषणीयता समाज को निरंक रखने का सर्वाधिक सफल माध्यम है। इस दृष्टि से भाषा का प्रश्न न्याय-प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। समाज मात्र कुछ व्यक्तियों का समूह नहीं है। वह ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो अपने व्यवहार, अपनी परंपराओं, तीज-त्योहारों एवं एक ही सांस्कृतिक सूत्र से बँधे हुए महसूस करते हैं।

जब भाषा का महत्व लोक-व्यवहार में इतना अधिक है तो उस प्रक्रिया में उसका महत्व कितना होगा, जो लोक-व्यवहार को नियंत्रित करती है, अर्थात् 'न्यायपालिका'। भारत एक विविधताओं वाला राष्ट्र है, जहाँ 'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर भाषा', फिर भी अनेक भाषाओं, परंपराओं, लोक संस्कृतियों के विभिन्न स्वरूपों के बावजूद हजारों सालों से भारतभूमि एक राष्ट्र के रूप में विश्व-पटल पर अपनी सुदृढ़ छवि के साथ प्रतिष्ठित है।

भारतीय न्याय-प्रणाली विश्व की प्राचीनतम न्याय-प्रणालियों में से एक है, जो 'कानून का राज्य' के सिद्धांत पर कार्य करती रही है। भारतीय न्यायिक व्यवस्था के हृदय में यह भाव सदा रहा है कि अधिकारों का प्रयोग अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के बाद ही संभव है। इस देश में जब शासन-व्यवस्था राजाओं के हाथ में थी, तब भी राजा के अधिकार लोककल्याणकारी निर्णयों के अनुरूप ही होते थे। राजा को कानून से ऊपर कभी नहीं माना गया। कानून परंपराओं से ऊपर नहीं, बल्कि परंपराओं से ही संचालित होता था। 'राज व्यवस्था' में राजा का स्थान सर्वोच्च भले ही था, पर न्यायधीशों को सदैव स्वतंत्र रखा गया।

प्राचीन भारत की न्याय-व्यवस्था के बारे में बृहस्पतिजी कहते हैं- "न्यायालय को केवल लिखित कानून के आधार पर निर्णय नहीं करना चाहिए। निर्णय समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं परंपराओं के अनुरूप होना चाहिए, भले ही वह पुस्तक में लिखे हुए कानून से भिन्न ही क्यों न हो।"

भाषाई न्यायिक व्यवस्था में गतिरोध मुगलों द्वारा फारसी और अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी को लागू करने से हुआ। फारसी तो धीरे-धीरे

Scanned with CamScanner

हिंदी से घुल-मिलकर पहले उर्दू और फिर हिंदुस्तानी में बदलने लगी, जिस कारण आम हिंदुस्तानी इस भाषा के निकट आने लगा। सन् 1833 तक अंग्रेजों ने भी इसे ही शासन के समस्त निकायों में प्रयोग किया, लेकिन लॉर्ड मैकाले ने फारसी के स्थान पर अंग्रेजी भाषा को राजभाषा के स्थान पर आरूढ़ करा दिया।

देखते-ही-देखते हिंदी न्यायिक क्षेत्र से आगे जाकर शिक्षा, व्यवसाय, शासन-व्यवस्था आदि क्षेत्रों में भी किस प्रकार अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर सके, इसका मंथन तत्कालीन राष्ट्र-निर्माताओं ने बखूबी किया।

न्यायिक प्रक्रिया में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी सक्षम न्यायिक प्रक्रिया की दृढ़ता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि वह कितनी कारगर है और सामान्य जन की न्यायालय तक पहुँच कितनी है? न्याय कितना त्वरित हो रहा है? सामान्य जन की कानून के प्रति कितनी सजगता है? न्यायालय तक सामान्य व्यक्ति की पहुँच कानून को समृद्ध करने का सशक्त रूप है, जो भाषा के माध्यम से ही पूरा होता है। बिना सर्वग्राह्य भाषाओं के यह कार्य संभव नहीं है।

न्यायिक प्रक्रिया के तीन मुख्य चरण होते हैं- न्यायालयों तक पहुँच, प्रभावी निर्णयात्मक शक्ति तथा निर्णय का क्रियान्वयन। इन तीनों के मूल में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि न्यायालय किसी ऐसी भाषा में कार्य करता है, जिससे वादी अनभिज्ञ है तो वह अदालत में जाने से कतराएगा। यदि निर्णय किसी ऐसी भाषा में लिखा गया है, जो कि पक्षों के लिए अनभिज्ञ है तो निर्णय की व्याख्या के लिए वह दूसरों पर आश्रित रहेगा। जब निर्णय ही समझ में नहीं आया तो उसका क्रियान्वयन भी किसी दूसरे की व्याख्या के अधीन रहेगा।

इसलिए भी न्यायिक प्रक्रिया पक्षकारों को समझ में आनेवाली भाषा में ही संचालित की जानी चाहिए, ताकि देश के नागरिकों को उनके नैसर्गिक अधिकार सहज रूप से प्राप्त हो सकें। तभी लोकतंत्र के सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ एवं आम नागरिकों के अंतिम आश्रय 'न्यायालय' में भारतवासियों की आस्था दृढ़ होगी। यही आस्था शोषण से मुक्ति का सुलभ मार्ग प्रशस्त करेगी। तभी हमारे राष्ट्र-निर्माताओं, मनीषियों, चिंतकों का राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न साकार हो सकेगा और भारत एक बार फिर विश्व का सिरमौर बन 'सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्ताँ हमारा' का जयघोष कर सकेगा।

ꕥꕥꕥ

4

CS Scanned with CamScanner

ISSN: 2348-7666
VOLUME - 4, ISSUE - 1, JANUARY, 2017
IMPACT FACTOR : 3.54

Conference Proceedings

International Journal of
Academic Research

VOICE OF INTELLECTUALS

A-V Rao

INTERNATIONAL CONFERENCE ON
25 YEARS OF ECONOMIC REFORMS IN INDIA (IC25YERI)
25th & 29th January, 2017

UGC Approved Date
Web of science group

2016-17

Jan-2017

(3)

Organized by
Department of Economics, Kakatiya University
Warangal, Telangana State, India.

Edited by
B SURESH LAL

Multidisciplinary, Multiple Languages
Refereed and Indexed Journal

CamScanner

DEPARTMENT OF ECONOMICS
KAKATIYA UNIVERSITY
WARANGAL, TELANGANA STATE - INDIA

Certificate of Presentation

International Conference on 25 Years of Economic Reforms in India (IC25YERI)

28 & 29 January, 2017 Warangal

A.Venkata Ramesh
Sgovt. Degree College, Sathupally

Has attended the conference and presented a paper entitled

Declining Institutional Credit To Agriculture In The Reforms Period

Conference Director

Scanned with CamScanner

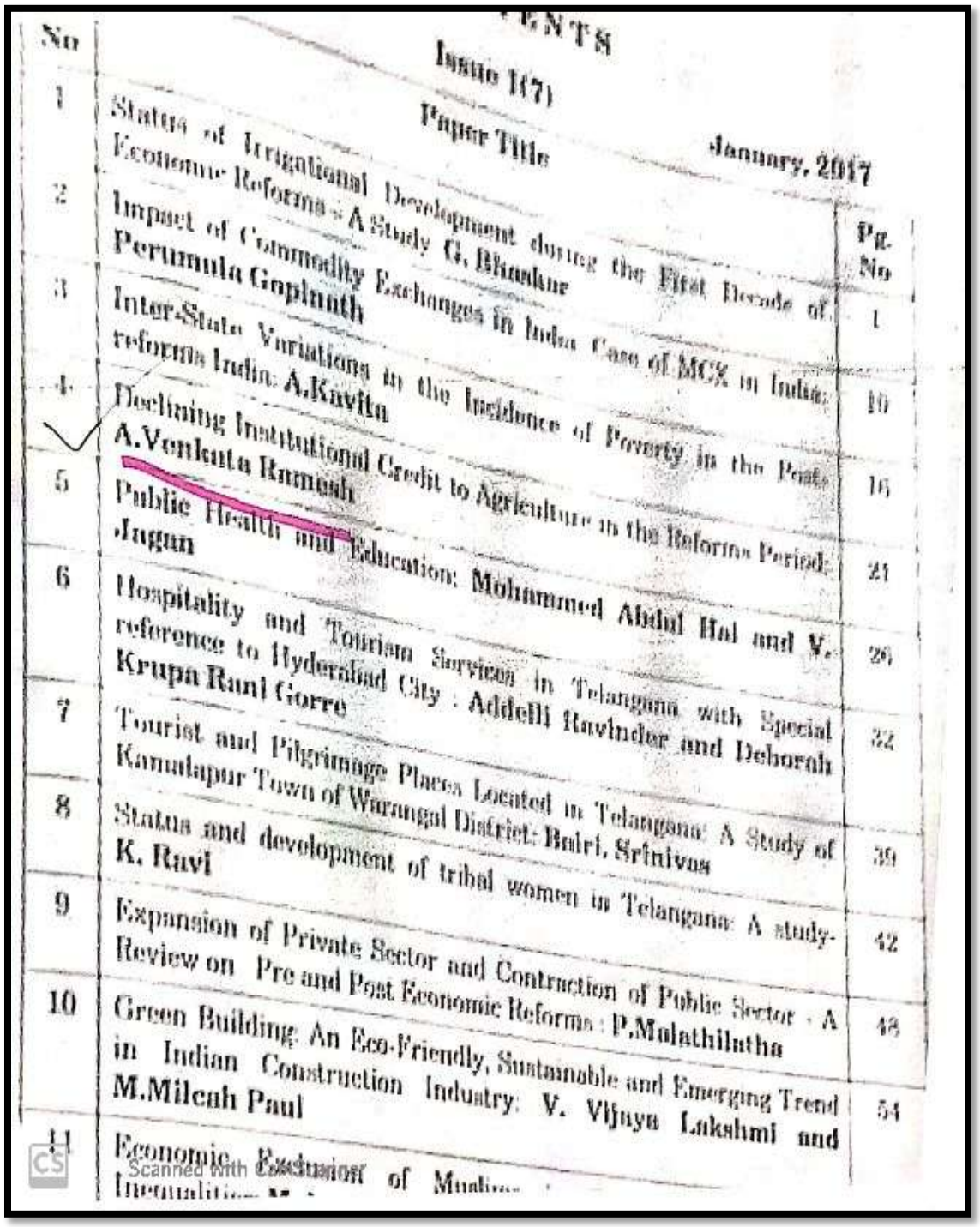

CONTENTS

Issue 1(7) January, 2017

No	Paper Title	Pg. No
1	Status of Irrigational Development during the First Decade of Economic Reforms - A Study G. Bhaskar	1
2	Impact of Commodity Exchanges in India Case of MCX in India: Perumula Gopinath	10
3	Inter-State Variations in the Incidence of Poverty in the Post-reforms India: A.Kavita	16
4	Declining Institutional Credit to Agriculture in the Reforms Period: A.Venkata Ramesh	21
5	Public Health and Education: Mohammed Abdul Hai and V. Jagan	26
6	Hospitality and Tourism Services in Telangana with Special reference to Hyderabad City : Addelli Ravinder and Deborah Krupa Rani Gorre	32
7	Tourist and Pilgrimage Places Located in Telangana: A Study of Kamalapur Town of Warangal District: Bairi. Srinivas	39
8	Status and development of tribal women in Telangana: A study- K. Ravi	42
9	Expansion of Private Sector and Contraction of Public Sector - A Review on Pre and Post Economic Reforms : P.Mulathilatha	48
10	Green Building: An Eco-Friendly, Sustainable and Emerging Trend in Indian Construction Industry: V. Vijaya Lakshmi and M.Micah Paul	54
11	Economic Exclusion of Muslims ... Inequalities ...	

Scanned with CamScanner

International Journal of Academic Research
ISSN: 2348-7666; Vol.4, Issue-1(7), January, 2017
Impact Factor: 4.535; Email: drtvramana@yahoo.co.in

2016-17
Jan-2017
(3)

Declining Institutional Credit to Agriculture in the Reforms Period

A.Venkata Ramesh, Asst.Prof of Economics, Govt. Degree College, Sathupally

Abstract: Despite the significant expansion of financial institutions in India the quantum of credit provided to the farm sector by them is inadequate. At present Indian agricultural needs higher investment to adopt new technologies. Agricultural production depends on the availability of timely credit. The credit needs of the marginal and small farmers who are in majority are to be addressed by the institutional sources, especially, commercial banks and co-operatives. The co-operative credit structure is to be revamped to make it effective in serving the credit requirements of the farmers. Indian farmer always faces uncertainties from weather, pests, market oscillations and the support prices decided by the government. It is to be accepted by all those concerned with economic development that agriculture is the prime mover of the economy.

Key words: support prices, family expenditure, pay off

Introduction:

Farmers in India are in the need of credit for short period of less than 15 months for cultivating crops and for meeting family expenditure. They need medium term credit ranging between 15 months to 5 years to make improvements of the land and to purchase cattle and other agricultural equipment. Sometimes they need credit to buy additional land, to pay off old debts, and to purchase agricultural machinery like tractor and pump sets. Credit requirements of the Indian farmers are productive and unproductive. Productive purposes include agricultural inputs and improvements to the farms while unproductive purposes are in the form of celebration of marriages, education of the children, health related expenditure, court cases and religious functions. Indian farmers depend on institutional and non-institutional sources for credit. Co-operative banks, commercial banks and Regional Rural Banks are the institutional agencies which charge low rates of interest. Non-institutional sources comprise money lenders, traders, commission agents, relatives and friends. Interest rates charged by the money lenders, commission agents and traders are high with stringent terms of repayment.

The financial sector reforms as part of overall economic reforms have weakened the flow of institutional credit to agriculture. Prior to liberalization, Nationalization of Banks in 1969 made credit available to the farm sector on priority basis along with Co-operatives. Narasimham Committee report on financial reforms (1992) recommended dilution of priority sector lending including agriculture by the commercial banks. Though priority lending to agriculture has not been totally removed commercial banks evinced little interest in providing agricultural credit sticking to the commercial norms. Agricultural in India has been facing credit crunch amidst crop failures and uncertain and un-remunerative prices. Non-Institutional sources of credit demanding higher rates of interest have forced the farmers into distress leading to crop

Scanned with CamScanner

holdidays and growing suicides. Regional rural banks have also adopted commercial principle and the co-operative credit has been shrinking. Its share in total institutional agricultural credit decreased from 59 percent in 1980-81 to23.8 percent in 2008-09. Rural branches of the commercial banks were 58.2 percent of the total branches in 1990 and they decreased to 36.9 percent by 2012. The share of agriculture in total Bank credit decreased from 15 percent in 1991-92 to 12.2 percent in 2011-12.

All these trends show that the lending by the institutions to the farmers has been affected considerably. This research paper analyses the institutional credit flow to the farm sector in the post-reforms era.

Objectives:-

1) To examine the trends in the credit flow of the commercial banks to the farm-sector in the post reforms period.
2) To find out the trends in the credit provision to the agricultural sector by the cooperatives.
3) To find out the relative shares of institutional and non-institutional credit between 1951 and 2002.

Materials and Methods: Data is secondary collected from Handbook of statistics on Indian Economy RBI (2012) and the Report of Expert group on Agricultural Indebtedness (2007). Simple averages and percentages shall be used while analyzing the data.

Review of Literature:

Singh et al (2012) in their study state that the share of agriculture in GDP has declined from over half at the time of independence to less than one fifth at present, agriculture still remain the prominent sector in terms of employment and income generation as more than half of the work-force in India are engaged is it as the principal occupation. Kumari (2005) contends that modern technology under Green Revolution has necessitated more capital for building farm infrastructure and meeting operational cost. Kaur (2012) opines that borrowings from the farm households are indispensable due to floods, droughts and other natural calamities. Rupindar Kaur and Karamjeet Kaur (2013) have analysed the problem of indebtedness among the marginal and small farmers in Kaithal district of Haryana. It is noted that majority of the farmers have borrowed loan amounts to purchase farm inputs and to meet family expenditure. Expenditure income gap constrains the farmers to divert the loan amounts for unproductive use. NSSO (2003) data reveals that the adherence to the commercial performance by the commercial banks has become a constraints on bank credit to agriculture. Narasimham Committee of Financial Reforms (1992) recommended for the dilution of priority sector lending, including agriculture. Instead of expansion some of the commercial banks closed the rural branches. Consequently farmers depend on money lenders and traders for loans accepting to pay exorbitant rates of interest. The All India Debt and Investment survey (1981) reveals that the share of non-institutional sources in total credit decreased from 93 percent to 37 percent in 1981 and money lenders accounted for 16 percent.

Data Analysis: Total bank branches, rural branches and their share in the total bank branches in India are presented for selected years in the Table-I.

Scanned with CamScanner

International Journal of Academic Research
ISSN: 2348-7666; Vol.4, Issue-1(7), January, 2017
Impact Factor: 4.535; Email: drtvramana@yahoo.co.in

Table-I: Bank Branches and Rural Branches

Year	Total Branches	Rural Branches	Percentage of Rural Branches
1991	60,220	33,206	58.5
1995	62,367	33,004	52.9
2000	64,939	32,857	50.6
2005	68,355	32,082	46.9
2010	85,324	32,525	38.1
2011	90,620	33,800	37.3
2012	97,111	35,850	36.9

Source: Hank Book of statistics on Indian Economy, RBI (2011-12)

Figures in the table reveal interesting facts on the expansion of bank branches. It is noted that the increase in the bank branches between 1991 and 2012 is 61.3 percent. But the increase in the rural branches in 2012 over 1991 is just 8 percent. If taken in percentage terms rural branches decreased from 58.5 percent to 36.9 percent during the post-reforms period. It implies Urban and Semi-Urban branches of the banks have increased from 41.5 percent to 63.1 percent under the commercial concern and prudential norms. Rural branches provide credit to farm activities and with the decrease in their number credit flow to agriculture is affected and the farmers are pushed to the non-institutional sources.

Trends in the agricultural credit provided by the commercial banks as percentages of total bank credit are presented in Table-II.

Table-II: Shares of Agriculture as a Proportion of Total Bank Credit

Year	Shares of Agriculture
1991-92	15.0
1995-96	12.2
2000-01	12.1
2005-06	12.4
2009-2010	13.7
2010-2011	12.6
2011-2012	12.2

Source: Hank Book of statistics on Indian Economy, RBI (2011-12)

It can be found from the data that the share of lending to agriculture in the total was 15 percent in 1991-92, the year of reforms. Although, credit to agricultural sector has been less than 15 percent except in 2009-10. The reluctance of the commercial banks in providing credit to agriculture is evident empirically as observed. The norms and priorities of the commercial banks in lending have under gone changes in the era of reforms.

Cooperatives provide credit to the farmers and they assumed importance as a source of institutional credit. Trends in the cooperative credit to agriculture are given in Table-III.

Co-operatives provides 59 percent of the agricultural credit in 1980s and it decreased to 47.3 percent in 1990-91.

Scanned with CamScanner

During the reforms period it went on declining to 23.8 percent by 2008-09. The decrease is by more than 35 percentage points. It implies that the farming community has been constrained to approach non-institutional sources after the reforms.

Table-III: Share of Cooperatives in Agricultural Credit

Year	Share of Cooperatives (Percent)
1980-81	59.0
1990-91	47.3
2004-05	42.7
2008-09	23.8

Source: Hank Book of statistics on Indian Economy, RBI (2011-12)

With a view to find out the relative shares of institutional and non-institutional sources in the debt of cultivator households data is processed in Table-IV.

Table-IV: Relative shares of Institutional and Non-Institutional Sources in the debt of farm households (In percentage terms)

Source	1951	1991	2002
Institutional	7.3	66.3	61.1
Non-Institutional	92.7	30.6	38.9
Unspecified Money lenders		3.1	-
As part of non-institutional	69.7	17.5	26.8

Source: Expert group report on Agricultural Indebtedness (2007)

As per the data the share of Institutional credit substantially increased to 66.3 percent in 1991 from a meager 7.3 percent in 1951. However after 1991 it decreased to 61.1 percent. Non-institutional credit to the farm households increased by 8.3 percentage points and again credit from money lenders increased by 9.3 percentage points. Economic reforms have encouraged credit flow to metropolis centres and bug cities due to which credit needs of the rural people, especially, farmers are drifted to the money lenders and other agencies of non-institutional credit.

Findings:-

1. Rural branches of the commercial banks have decreased in the post re-form period.
2. Share of agriculture in the total bank credit has declined with the reforms.
3. The share of co-operatives in agricultural credit has come down by more than 35 percentage points between 1980-81 and 2008-09.
4. The share of non-institutional sources in the debt of farm households has increased after 1991 with money lenders again resuming their role as important source of agricultural credit.

Conclusion:-

Despite the significant expansion of financial institutions in India the quantum of credit provided to the farm sector by them is inadequate. At present Indian agricultural needs higher investment to adopt new technologies. Agricultural production depends on the availability of timely credit. The credit needs of the marginal and small farmers who are in majority are to be addressed by the institutional sources, especially, commercial banks and co-operatives. The co-operative credit structure is to be revamped to make it effective in serving the credit requirements of the farmers. Indian farmer always faces uncertainties from weather, pests, market oscillations

Scanned with CamScanner

and the support prices decided by the government. It is to be accepted by all those concerned with economic development that agriculture is the prime mover of the economy.

The inhibitive approach of the bankers to extend credit to the agricultural sector needs correction as free flow of credit to this sector can increase agricultural production and augment GDP. Further, small and marginal farmers of which majority are marginalized social groups own majority of the operational holdings. Co-operatives and RRBS are to be strengthened to extend adequate and timely credit to the farmers. Then only agriculture in India can come out of the present state of distress and contribute effectively to achieve food security to the growing population.

References:-

1. Malik Yasir Ahmad and Azra Musavi (2013) "Trends and Patterns of Agricultural Credit in the Reform Period" Indian Economic Journal December".
2. Datt and Sundaram (2015) " Indian Economy" 75th edition, S.Chand & Co Ltd., New Delhi.
3. Expert Group Report on Agricultural Indebtendness (2007), Government of India.
4. Singh, Pand Singh, B (2012), " Cost of Cultivation and Problem of Indebtedness among the Marginal and Small farmers: A case study from Rural Punjab" Political Economy. Journal of India, Vol (21-2).
5. Kumari, R(2005) "An Economic Analysis of Rural Indebtedness in the Telangana zone of A.P" Indian
6. Journal of Agricultural Economics, Vol. 60 (3).
7. Kaur.K (2012), "Indebtedness and its Determinants in Indian Agriculture" Indian Journal of Economics Vol.88(367).
8. Rupinder Kaur and Karamjeet Kaur (2013), "Indebtedness among Marginal and small Farmers" the Indian Economic Journal, December 2013.
9. NSSO Reports.
10. The All India Debt and Investment survey 1981 -report

Scanned with CamScanner

International Journal of Academic Research
ISSN: 2348-7666; Vol.4, Issue-1(4), January, 2017
Impact Factor: 4.535; Email: drtvramana@yahoo.co.in

Priority Sector Lending by Scheduled Commercial Banks in India

K. Harikishan
Assistant Professor in Economics, at the Government Degree College, Choppadandi, Karimnagar

Abstract: *Commercial banks are financial agents that mobilise savings and invest them to achieve economic growth and development. Since 1980-81, Indian banking system posted impressive growth in both deposits and credit. An important objective in the nationalisation of major commercial banks in 1969 and 1980 was to ensure adequate credit to the important sectors of the economy at reasonable rates of interest. These sectors were, among others, agriculture and small scale industries. With the introduction of the banking sector reforms in 1991, these two sectors experienced considerable loss in terms of credit flows from the Scheduled Commercial Banks (SCBs). Declining credit flows caused considerable distress in these sectors. The government woke up to this challenge and tried to increase the credit to these sectors. Progress so far leaves much to be done if the credit needs of these sectors are to be met adequately.*

Key words: *credit flows, considerable distress, banking sector*

I. Introduction:

An important element in economic development is the mobilisation and deployment of financial resources. The commercial banks accept cash deposits from the public and use them to create credit for the needy[i]. In other words, the commercial banks are the financial intermediaries that ensure a demand for funds and supply of funds equality. India embarked on the strategy of economic planning in 1952. Realising that the credit flows to agriculture and small scale industries are grossly inadequate, the government nationalised 20 major scheduled commercial banks (SCBs) in two phases, in 1969 and 1980. We explore in this paper the impact of the banking sector reforms introduced in 1991 on the credit flows to these two sectors and to the priority sector as a whole. The data covers the years from 1980-81 to 2015-16. Section Two provides a survey of literature; Section Three explains the methodology employed; Fourth Section provides the data analysis and the results for the study period and Section Five provides the concluding remarks.

II. Review of Literature:

There is clear evidence that since the introduction of banking sector reforms in 1991, there has been a reduction in the advances to the priority sector as a whole as well as to the individual sub-sectors. This was a result of the Narasimham Committee's scepticism about the effectiveness of directed credit deployment to the selected sectors. The credit flows going to the small and marginal farmers have declined significantly since 1991. This refers both to the number of borrowers as well as the amount sanctioned. This was noted by the Reserve Bank of India as early as 2003.[ii] Sahu and Rajasekhar (2005)[iii] made the same observations about the post-reform trends in the credit flows to

Scanned with CamScanner

the agricultural sector. This was further confirmed by Sastry and Venkateswarlu (2016).[iv] The present paper explores these trends and includes the credit flows to the small scale industries also.

III. Methodology: We employ the Chow test and use descriptive statistics to examine the trends in Scheduled Commercial Bank (SCBs) Credit and Deposits 1980-81 to 2015-16.

IV. Results and Discussion:

As noted above, the total financial resources mobilised and deployed by the commercial banks are important in the process of capital formation and economic development. Examining the trends in these two variables provides an understanding about the role that the banks are playing in the economy. The total deposits of SCBs rose from ` 379.88 b in 1980-81 to ` 1,925.41 b in 1990-91. By 2015-16, they reached ` 85,332.35 b. During the same period, the outstanding credit by the SCBs rose from ` 253.71 b to ` 1,163.01 b and, further to ` 65,364.20 b. The deposits to GDP ratio was 32.24 per cent during 1980-81 to 1990-91. During the post-reform period, 1991-92 to 2015-16, it rose to 55.64 per cent. Similarly, the bank credit to GDP ratio rose from 20.65 per cent in 1980-81 to 1990-91, to 36.90 per cent during1991-92 and 2015-16. The credit-deposit ratio, which is the measure of the role played by banks in the economy, fell from 73.16 per cent during the pre-reform period to 59.33 per cent in the post-reform period.

In order to see if there is any change in the operations of the SCBs after the introduction of banking sector reforms in 1991, we use the Chow Test.[v] Table 1 shows the results of this test.

Table 1 operations of the SCBs after reforms- Chow Test results

Equation	Constant	Time	Adjusted R^2	F-Static
1. Total SCB Credit				
I) 1980-81 to 2015-16	5.237 (112.6)	0.166 (75.93)	0.993	5366
II) 1980-81 to 1990-91	5.409 (330.8)	0.149 (62.09)	0.997	3854.707
III) 1991-92 to 2015-16	6.873 (141.8)	0.178 (54.80)	0.992	3003.784
2. Total SCB Deposits				
i) 1980-81 to 2015-16	5.793 (300.5)	0.161 (177.0)	0.999	31331
ii) 1980-81 to 1990-91	5.757 (731.3)	0.165 (142.3)	0.999	20251.54
iii)1991-92 to 2015-16	7.588 (278.5)	0.159 (66.81)	0.995	7536.06

Figures in parentheses show the t-static.

Source: Reserve Bank of India: 'Handbook of Statistics 2015'.

Scanned with CamScanner

The post-liberalisation period witnessed rapid growth in SCB credit relative to their deposits (Equations 1.iii and 2. iii). The SCB credit growth indicates a significant structural break after 1991. The growth rate was 16.07 per cent in the pre-reform period and 19.48 per cent in the post-reform period, compared to a growth rate of 18.06 per cent for the entire period. The SCB deposit growth slowed down after 1991. During 1991-2015, they posted a growth rate of 17.32 per cent compared to 17.94 per cent in the pre-reform period and 17.54 per cent for the years 1980-81 to 2015-16. It is possible that the higher growth in credit could be due to availability of funds due to the lowering of SLR and CRR stipulations and this needs to be explored. We now turn to the trends in the SCBs' lending to the priority sector since 1980-81. This is important since the main objective of the Nationalisation of commercial banks was to ensure adequate credit flows to the more important sectors of the economy- 'the priority sectors'. Agriculture, small scale industries, exports, and small housing loans are some of the sub-sectors within this group of activities. The total priority sector lending increased from ` 84.53 b in 1980-81 to ` 431.17 b in 1990-91. It reached ` 16088 b by 2015-16. The credit to the priority sector posted a growth rate of 15.72 per cent per annum during 1980-81 to 2015-16. The credit to agriculture by the SCBs increased from ` 35.84 b in 1980-81 to ` 167.5 b in 1990-91. It reached ` 7658.80 b in 2015-16.

We examine the trends in the total priority sector lending by the SCBs and the credit flows to agriculture and small scale industries in particular. We consider 1991 as the year of a structural break due to the introduction of the banking sector reforms and the emphasis on profitable operations and removal of branch licensing norms. Table 2 shows the equations for the growth of priority sector lending during the study period and the structural breaks therein.

Table: 2: Structural Breaks in Priority Sector Lending by the SCBs (1980-81 to 2015-16)

Equation	Constant	Time	Adjusted R^2	F-static
1. Priority Sector Lending				
i) 1980-81 to 2015-16	4.362	0.146	0.992	4285.14
	(91.94)	(65.46)		
ii) 1980-81 to 1990-91	4.265	0.167	0.996	3101.70
	(208.8)	(55.69)		
iii) 1991-92 to 2015-16	5.917	0.149	0.979	1166.938
	(90.98)	(34.16)		
2. Agricultural Credit				
i) 1980-81 to 2015-16	1.989	0.013	0.992	4244.07
	(440.4)	(65.15)		
ii) 1980-81 to 1990-91	1.963	0.167	0.997	4096.86
	(1108)	(64.01)		

Scanned with CamScanner

iii) 1991-92 to 2015-16	2.165 (892.0)	0.123 (75.51)	0.995	5701.684
3. Credit to Small Scale Industries				
i) 1980-81 to 2015-16	3.462 (13.15)	0.137 (11.06)	0.776	122.258
ii) 1980-81 to 1990-91	3.315 (217)	0.171 (18.63)	0.998	5754.335
iii) 1991-92 to 2015-16	4.871 (12.63)	0.143 (5.51)	0.550	30.368

Figures in parentheses show the t-static. Source: Reserve Bank of India: 'Handbook of Statistics 2015'.

From the above table, we can see a clear decline in the share of priority sector credit after the introduction of banking sector reforms in 1991. There appears to be a clear structural-break in the SCB lending to priority sector after 1991. We provide in Table 3 the growth rates in total bank credit, credit to priority sectors and the two sub-sectors after 1991 to capture the variability in the credit flows.

Table: 3 Growth Rates in SCB Credit Flows during 1991-92 and 2015-16 (per cent):

Period	Total SCB Credit	Total Priority Sector Credit	Credit to Agriculture	Credit to Small Scale Industries
1991/92- 1995/96	17.67	17.46	1.69	15.59
1996/97- 2000/01	17.29	11.34	1.15	11.41
2001/02- 2005/06	17.10	20.29	1.11	12.12
2006/07- 2010/11	18.77	26.28	1.39	31.89
2011/12- 2015/16	10.18	12.85	1.08	16.58
1991/92- 2015/16	19.48	16.11	1.24	15.36

Source: Reserve Bank of India: 'Handbook of Statistics 2015'.

From the above table we can observe that the credit to priority sector declined sharply after the introduction of the banking sector reforms in 1991. The increase after 2005 can be attributed to the initiatives taken by the government to promote credit to this sector after the decline in the agricultural production in the 2002 onwards. Similarly in case of the small scale sector, the initiatives after 2007 to promote this sector forced the SCBs to increase credit flows to this sector.[vi] More importantly, most of the credit flows in agriculture were to the large farmers, while the credit flows to

Scanned with CamScanner

small and marginal farmers declined after 1991.[vii]

V. **Conclusions**: Thus, the risk-aversion of the commercial banks resulted in the denial of adequate credit at reasonable interest rates to the needy. It will not be far from truth to say that emphasis on profitability and prudential norms resulted in SCBs ignoring their very mandate in a developing economy. Measures must be initiated to increase the flow of institutional credit to the needy sectors of the economy.

---

[i] Goldsmith, R.W. (1969): 'Financial Structure and Development', Yale University Press.
[ii] Reserve Bank of India (2003): 'Report on Currency and Finance 2001-02', Mumbai.
[iii] Sahu, G.B. and D. Rajasekhar (2005): 'Banking Sector Reform and Credit Flow to Indian Agriculture', Economic and Political Weekly, December 31, 2005.
[iv] Sastry, K.L.N., and K. Venkateswarlu (2016):'Commercial Banks' Lending To Agriculture In The Post-Reform Period: A Subtle Case Of Financial Exclusion'.Paper presented at the International Conference organised by the Department of Commerce, University of Mumbai in January 2016.
[v] Gujarati, D.N (2004): 'Basic Econometrics'. Tata McGraw-Hill.
[vi] Government of India: 'Economic Survey 2005-06'.

Scanned with CamScanner

ECO

Ar. Ramesh Sir. Publications

INTERNATIONAL CONFERENCE ON 25 YEARS OF ECONOMIC REFORMS IN INDIA (IC25YERI)

28 & 29 January, 2017

Jan-2017

2016-17

(4)

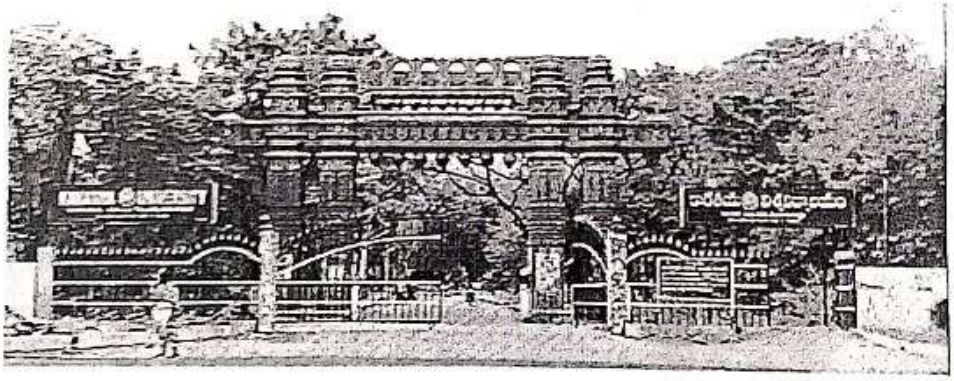

Organized by

Department of Economics,

Kakatiya University, Warangal-Telangana State, India

Scanned with CamScanner

15	Impact of service quality on customer satisfaction in Public sector and private sector banks: **Sardar Gugloth** and **V.Aswini**	123
16	Priority Sector Lending by Scheduled Commercial Banks in India: **K. Harikishan**	127
17	Gendered Agrarian Transition in India: **Apurva, Kh**	132
18	Cropping Pattern in Agency Area of Telangana State: **K. Chalapathi Rao** and **Yesuratnam Vemu**	141
19	Impact of Globalization on Tribal Economy - An Empirical Study: **Devoji Gugulothu**	147
20	A Study on Socio-Economic Profile of Women Workers in the Construction Industry in Coimbatore City: **A. Govindharaju** and **B. Vanitha**	155
21	Human resource development in the technological era: **Amena Khatoon**	166
22	Scheduled caste women in agriculture sector – an empirical study: **K. Jagajjeevan Rao** and **G. Swapna**	172
23	Two decades of automation in Indian banking sector-Issues and challenges: **B.Jail Singh**	180
24	Impact of globalization and Marketization on Tribal livelihood-A Study in Telangana: **Jambu Gugulothu**	187
25	Inclusive growth and food security through integrated child development service programme: **K. Krishna Reddy**	194

ECO

Av. Research Publication

ISSN: 2348-7666
VOLUME - 4, ISSUE 1 (4), JANUARY, 2017
IMPACT FACTOR: 4.535

International Journal of Academic Research

VOICE OF INTELLECTUALS

2016-12

(4)

INTERNATIONAL CONFERENCE ON

25 YEARS OF ECONOMIC REFORMS IN INDIA (IC25YERI)

28th & 29th January, 2017

Jan-2017

Organized by

Department of Economics, Kakatiya University
Warangal, Telangana State, India.

Edited by

B. SURESH LAL

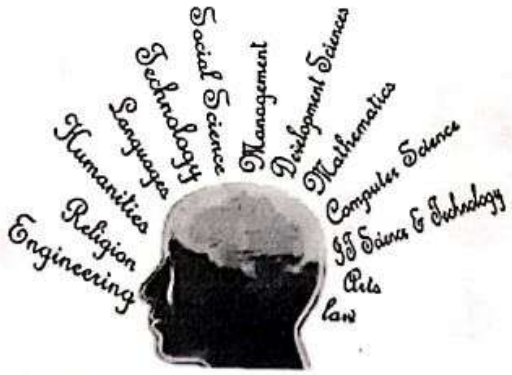

Multidisciplinary, Multiple Languages
Refereed and Indexed Journal

Editor-in-Chief
Dr. T. V. Ramana

Scanned with CamScanner

Book

दलित आत्मकथा एवं आत्मकथाकार

2016-17

5

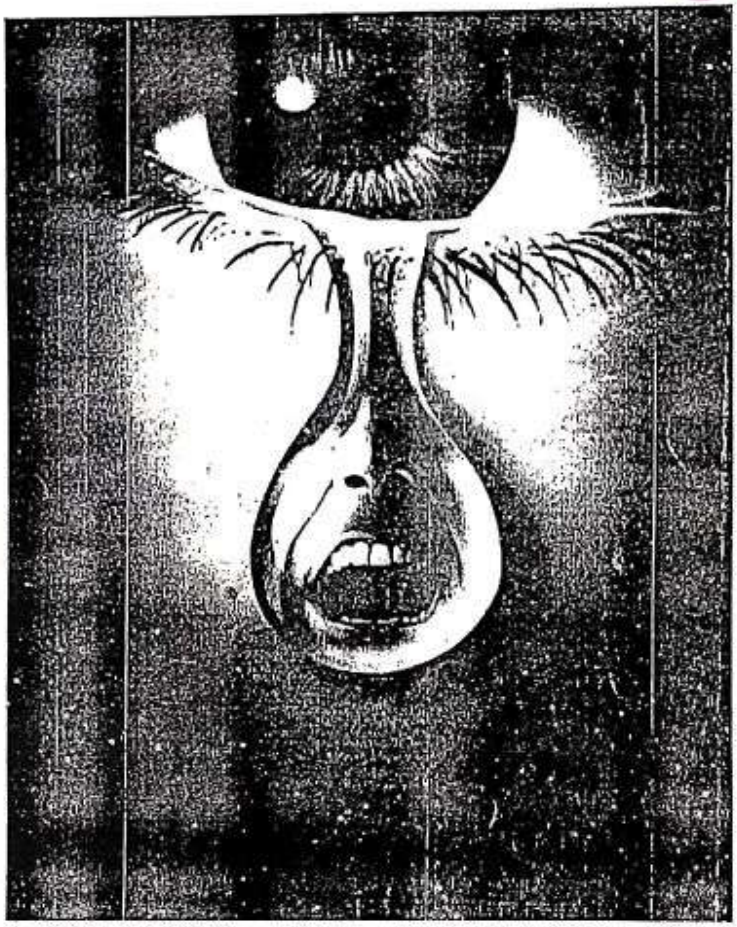

संपादक | डॉ. संदीप श्रीराम पाईकराव
डॉ. ख़ाज़ी मुख्तारोद्दिन

Scanned with CamScanner

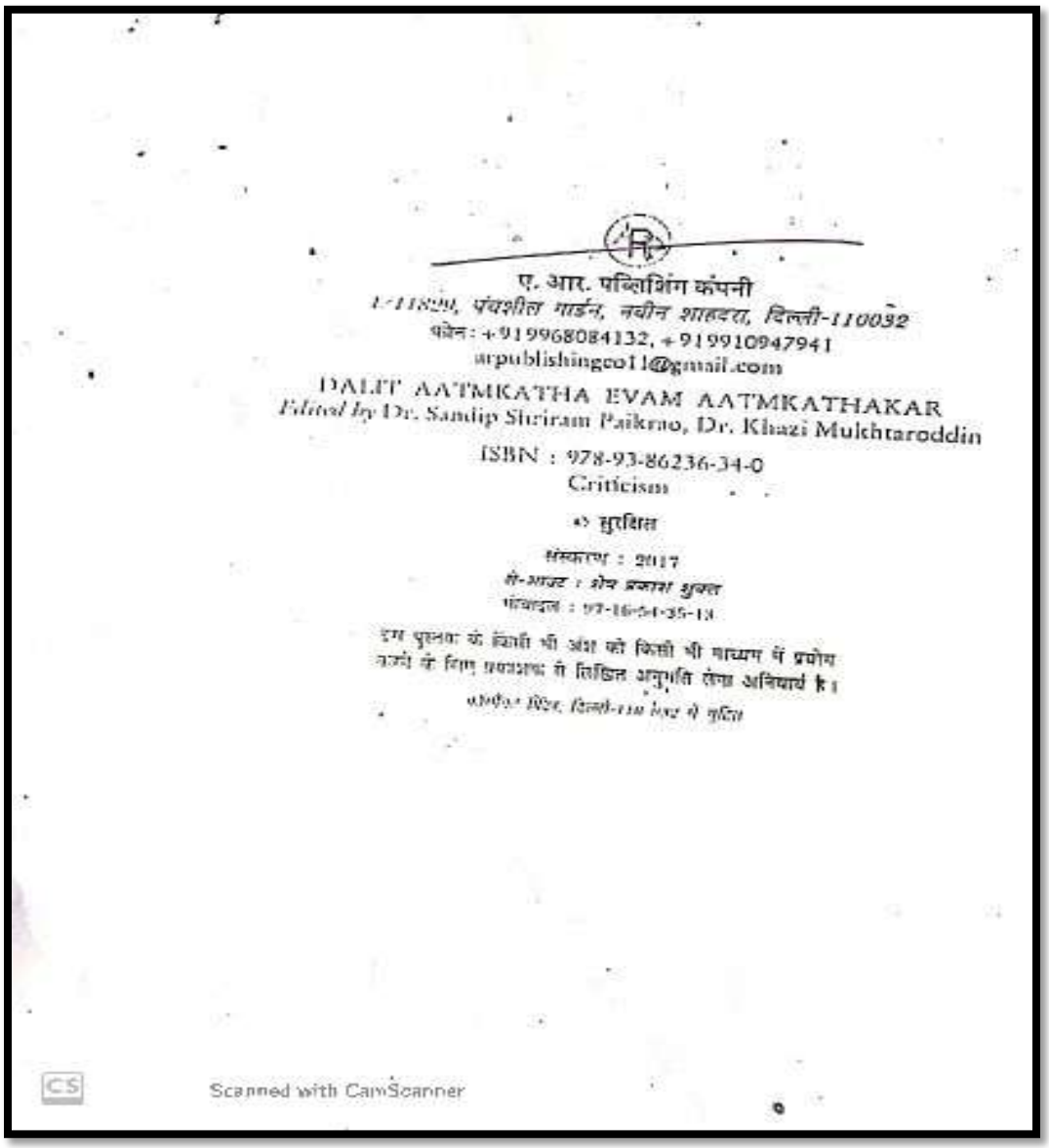

ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी
1-11829, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन: +919968084132, +919910947941
arpublishingco11@gmail.com

DALIT AATMKATHA EVAM AATMKATHAKAR
Edited by Dr. Sanjip Shriram Paikrao, Dr. Khazi Mukhtaroddin

ISBN : 978-93-86236-34-0
Criticism

© सुरक्षित

संस्करण : 2017
कॉ-आर्डर : शेख इलियास शुक्रत
मोबाइल : 97-16-54-35-13

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

...Nagar, Delhi-110 ... से मुद्रित

Scanned with CamScanner

दलित आत्मकथा 'मेरा सफर मेरी मंजिल'

टी. सुमती

'मेरा सफर मेरी मंजिल' डॉ. डी: आर. जाटव की सन् 2000 में समता साहित्य सदन से प्रकाशित आत्मकथा है। जो दलितों के जीवन को संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं कि—"अछूतों के रूप में मेरे पूर्वज निर्धनतम लोगों में भी निर्धन थे। उनके स्पर्श, छाया और दृश्यता से समाज के शक्तिशाली उच्च जातियों के स्त्री-पुरुष अपवित्र हो जाते हैं। उनके लिए वे भी सभी मार्ग बन्द थे जो शिक्षा और ज्ञानोदय की दिशा की ओर जाते थे। अतः उन्होंने नीरसता, निर्धनता और गन्दगी के अन्धकार तथा जीवन की धुंध का कटु अनुभव किया।"[1] इस तरह लेखक ने अपने पूर्वजों के जीवन पर प्रकाश डाला है।

लेखक के माता-पिता दोनों ही अनपढ़ थे। किन्तु शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह महत्व देते थे। इसलिए उन्होंने लेखक को पढ़ाने का निश्चय किया। इस सन्दर्भ में वे बताते हैं-"जब उन्होंने उन लोगों की ओर देखा जो शिक्षित थे, अच्छे साफ-सुथरे कपड़े पहनते थे और सरकारी कार्यालयों में नौकरी करते थे, तब उन्होंने मुझे भी शिक्षा देने की ओर संकेत किया और चाहा कि मैं स्कूल जाया करूं।"[2] यहाँ लेखक के पिताजी का प्रगतिवादी दृष्टिकोण ही दिखाई देता है। जो गरीब, अशिक्षित होने के बावजूद अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं क्योंकि इससे बच्चों का जीवन सुखी बने यही उनका उद्देश्य रहा होगा। उन्हें भी गन्दगीपूर्ण वातावरण में काम करना पड़ता था इससे छुटकारा देना भी उनका लक्ष्य था इसी कारण अपने बच्चे को वे उच्च शिक्षित करना चाहते थे। इस प्रसंग को लेखक बताते हैं- "पिताजी की यह दिली तमन्ना थी कि मैं पढ़ लिखकर जीवन में आगे बढ़ूँ, मेरा एक अच्छा भविष्य बने ताकि धूलभरी सड़कों की बैल गाड़ियों में लादे जानेवाले खाद्यान्नों को रखने हेतु-सफाई न करनी पड़े और उस संकरी, तंग, दुर्गन्ध भरी गली में न बैठना पड़े, जहाँ वह स्वयं बैठा करते थे।"

Scanned with CamScanner

लेखक के पिता जिस आढ़तिया की दुकान में काम करते थे। उसी दुकान उनकी माँ भी काम करने लगी क्योंकि उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। ऐ विकट समय में अपने भोजन के बारे में वे लिखते हैं—"हमारा अभावग्रस्त जीव था, न घर में स्नान घर और न ही नहाने का साबुन। हम सामान्य पानी से नहाते मोटे सूती कपड़ों को पहनते और मोटे अनाजों की बनी पिसी रोटियाँ खाते थे।' इस तरह दलितों को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में संघर्षों से गुजरना पड़ा है। न उन्हें खाने के लिए ठीक से अन्न मिलता था न पहनने के लि वस्त्र लेखक को भी वस्त्र की समस्या हुई है। जिसका लेखक स्मरण कर हैं—"हम को गर्मियों में उपयुक्त वस्त्र नहीं मिलते, सर्दियों के मौसम में कंबल रजाई आदि का भी अभाव था। पत्नी को फटे-पुराने कपड़ों से बनी गुदड़ी ह ओढ़ने को मिलती, खाट पर बिछाने के लिए मात्र दो बोरियाँ। ऐसा था वा घोरनेवाला वक्त, अब अभाव, कठोरता एवं परिश्रम हम लोगों का भाग्य था।" इस प्रकार लेखक को न ठीक से खाने के लिए अन्न मिलता था न पहनने-ओढ़ने के लिए वस्त्र। यह समस्या केवल अकेले लेखक की समस्या नहीं बल्कि पूरे दलित वर्ग की समस्या थी। लेखक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका अम्बेडकरवाद होना। इसी के कारण उन्हें पी.एच.डी. की शिक्षकी के दौरान अनेक मानसिक आघात सहने पड़े थे।

'मेरा सफर मेरी मंजिल' में लेखक ने स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया है कि आत्मकथा लिखने का एकमात्र उद्देश्य केवल यही है कि उनके जीवन पर किस प्रकार डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव पड़ा और वे किस प्रकार डॉ. अम्बेडकरवादी हुए। जब डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली तब वह बहुत मूल्यवान साबित हुई इसी दीक्षा का चित्रण लेखक ने किया है—"इस शताब्दी में स्वतन्त्रता, समता, भ्रातृत्व तथा न्याय का झंडा डॉ. अम्बेडकर ने एक क्रान्तिकारी सामाजिक, परिवर्तन के हेतु हमारे लिए मान्यता के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहा ये सब मानव की गरिमा और सदाचार के लिए समतावादी आचार विचारों पर बल देते हैं तब फिर मेरे समक्ष अन्यत्र जाने के लिए क्या रह जाता है।'" लेखक ने बुद्ध और अम्बेडकर का कितना गहन अभ्यास किया था, यही दिखता है। बौद्ध धर्म की नींव ही समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता पर आधारित है।

लेखक का मानना है कि दलित समाज को पूरी तरह से अम्बेडकरवादी बनना चाहिए। सवर्णों का अनुकरण नहीं करना चाहिए ऐसा वे मानते हैं। किन्तु दलितों ने हर क्षेत्र में सवर्णों का ही अनुकरण किया है। जिसे लेखक विवाह प्रथा के सन्दर्भ में बताना चाहते हैं। खेद व्यक्त करते हैं—"वे धनाढ्य परिवार जो

Scanned with CamScanner

शादी-विवाहों पर अधिक लेन-देन करते हैं, उनकी देखा-देखी अनुसूचित जातियों के शिक्षित परिवारों में भी दहेज लेन-देन अथवा सौदेबाजी की बीमारी लग चुकी है, जो एक अप्रिय दुःखदायकता का दायरा बहुत ही प्रमाणिकता से स्पष्ट हुआ है। दलित समाज कितना दरिद्रावस्था को प्राप्त है। आज-कल के दौर में तो और भयंकर स्थिति ने जन्म लिया है, क्योंकि कोई व्यवसाय करने के लिए उसे कुछ मदद नहीं मिलती। न कोई व्यवसाय वह कर सकता है। आजकल अनेक यन्त्रों के कारण भी उसका काम भी छिना गया है। लेकिन भारत के सन्दर्भ में यह बात लागू नहीं होती क्योंकि यहाँ का ब्राह्मण कितना भी गरीब क्यों न हो। वह ऐसे काम करना नहीं चाहता। भले ही उसे ज्यादा पैसे मिलते हो। लेकिन दलितों को निम्न से निम्न काम ही करना पड़ता है। आज के सन्दर्भ में भी देखा जाये तो भारत में जितने भी सफाई कर्मचारी या मैला साफ करने वाले वह केवल दलित होते हैं न कि सवर्ण।

सवर्ण पिछड़े हुए दलितों का सहारा लिए अपनी सत्ता चलाते रहे हैं, यह सब दलित अनपढ़ होने के कारण है और दलितों का अशिक्षित रहना है। दलितों को शिक्षा प्राप्त कर लेना और ज्ञान से आगे चलना यही इनका धैर्य बन सकता है।

सन्दर्भ

1. मेरा सफर मेरी मंजिल, डी. आर. जाटव, पृ. ।
2. वही, पृ. 3
3. वही, पृ. 4
4. वही, पृ. 9
5. वही, पृ. 13
6. वही, पृ. 184

Scanned with CamScanner

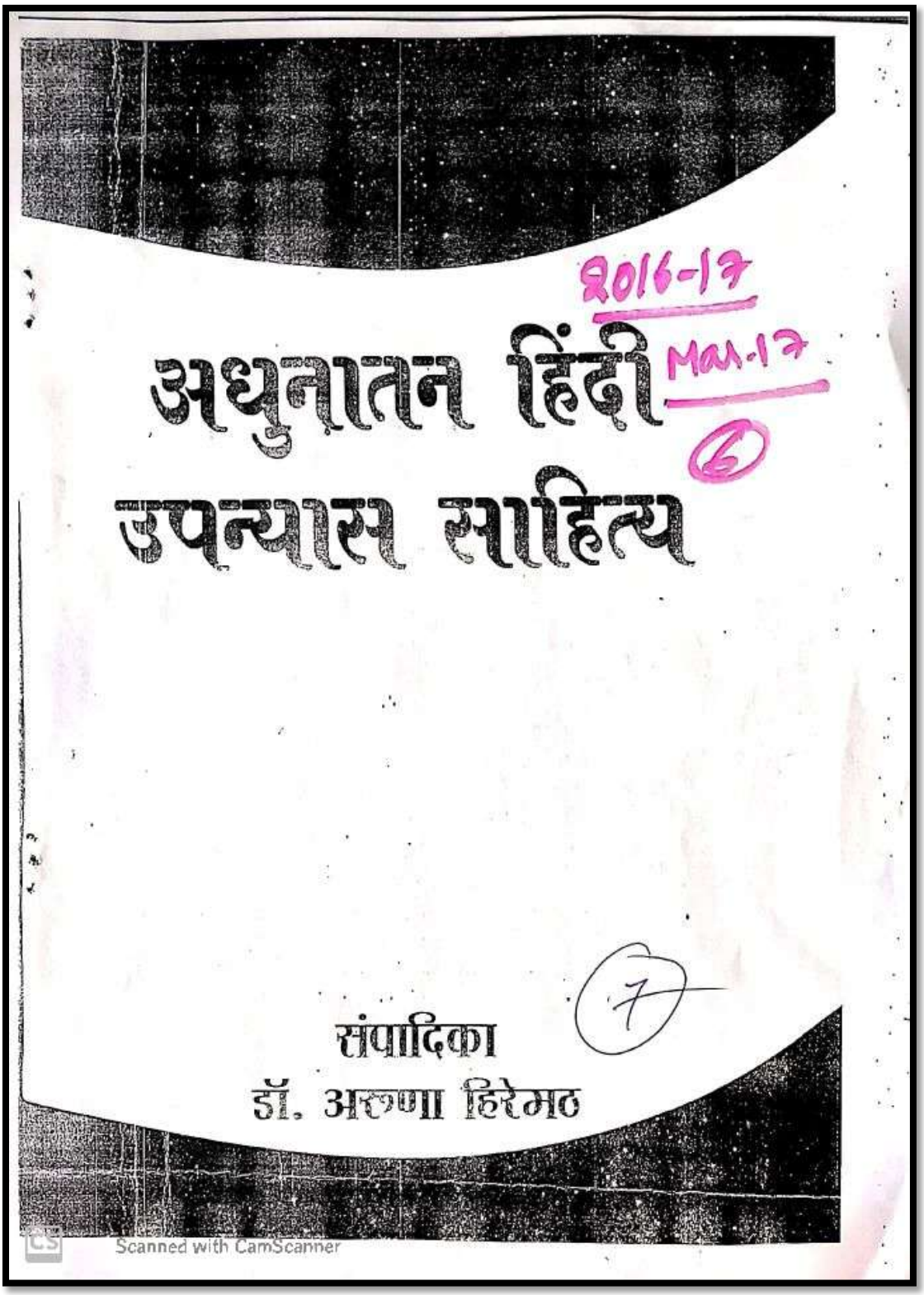
2016-17
MA-I-7
(6)
अधुनातन हिंदी
उपन्यास साहित्य
(7)
संपादिका
डॉ. अरुणा हिरेमठ
Scanned with CamScanner

अधुनातन हिंदी उपन्यास साहित्य

(Adhunatan Hindi Upnyas Sahitya)

संपादिका	:- डॉ. अरुणा हिरेमठ
सहायक संपादक	:- डॉ. दत्ता साकोळे
	:- डॉ. ज़ाशम बेग मिर्ज़ा
ISBN	:- 978-93-83742-08-0
प्रकाशन तिथि	:- १८/०३/२०१७
मुद्रक	:- भरत ग्राफिक्स कळंब
अक्षर जुळवणी	:- शिंपले मारुती, स्नेहा बनसोडे
मुखपृष्ठ	:- गणेश सातपुते
प्रकाशक	:- हमदर्द पब्लिक लायब्ररी, फलकनुमा किला, बीड - ४३११२२, महाराष्ट्र (भारत)

किमत :- २०० रु.

प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं।

CS Scanned with CamScanner

अधुनातन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चित्रित नारी

- टी. सुगती,

असिस्टेंट प्रोफेसर,

सत्तुपल्लि,खम्मम् जिला,

तेलंगाण राज्य,

दूरभाष : 09515125830

हिंदी साहित्य उपन्यासों में समकालीन जीवन और परिवेश में रूढियों, अंधविश्वासों और असमानता आधारित धर्म के जर्जरित स्वरूप का खण्डन तथा समानता, न्याय और सद्भाव पर अधिष्ठित युगग्राथा व्यापक मानवतावादी धर्मचरण की महत्ता को प्रतिष्ठित किया गया है। स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जरूर कुछ ऐसी नारी पात्र उभरी हैं जो जीवन संग्राम में जूझकर समाज की पुरानी मान्यताएं बदलने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष दिखाकर मानवीय दुख, वेदना एवं आचरण की संगति के कारणों को अन्वेषण करने की प्रवृत्ति प्रबल रूप से दिखाई पडती हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का धरातल उपन्यासकारों ने मानव जीवन के उस धरातल से चुना है जहाँ के मूल्य टूट गये है, संवेदनाएं बिखर गई है, अनुभूतियों उतार–चढाव के बाद इतने तनावों में बनती–बिगडती हैं कि उनका एक रूप या स्तर नहीं रहा जाता। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में सर्व श्री जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, इलाचन्द्र जोशी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ. देवराज, नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, राज कल चौधरी आदि उल्लेखनीय हैं।

जैनेन्द्र कुमार के नारी चरित्रों के संबंध में डॉ. बेचन का यह कथन है कि– "नारी चित्रण के मूल्यांकन में जैनेन्द्र के विशेष नवीन मोढ दिये है। जैनेन्द्र की नारियाँ नारी जीवन की विविध संवेदनाओं को लेकर आयी इसीलिये जैनेन्द्रजी को नारी चरित्र का कथाकार कहा जा सकता है।"

'सुखदा' उपन्यास की नायिका सुखदा अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति के कारण स्वतंत्र व्यक्तिवादी बन गई है। सुखदा वैवाहिक जीवन से अतृप्त होकर राजनीति के क्षेत्र में आती है। वस्तुतः उसका अचेतन मन अतृप्त वासना की पूर्त्ति के लिए व्याकुल है। किन्तु मन से वह उसे स्वीकार नही करती। वस्तुतः उस पर न पति का शासन है और न समाज का अंकुश। इसीलिए विवाहित होकर भी वह लाल की ओर आकर्षित होती है और उसका पति कान्त इस व्यवहार को जानते हुए भी इसका विरोध नहीं करता। लेकिन सुखदा इस स्वतंत्रता को आत्मसात नहीं कर सकी। जीवन के उतार–चढावों को झेलकर सुखदा महसूस करती है– "चारों ओर से काट–काट कर अपने को अलग करती गयी और एकांकी बनकर जिधर भागती हुई चली जाती हूँ वही देखती हूँ कि रेत, रेत केवल मृगतृष्णा" डॉ. रामरतन भटनागर जी के अनुसार "सुखदा नारी के बहिर्गमन की कहानी है। बाहर जाकर भी नारी मन की दहलीज

Scanned with CamScanner

लांघ नही पाती। यह जो विवशता है। यह स्वयं ही जानती है हृदय रो देता है। नारी के यह द्वन्द्व स्थिति सुखदा में उभरी है।

जैनेन्द्र कुमार जी के उपन्यास विवर्त में नायिका भुवमोहिनी के बारे में उनका कहना है– "विवाह संबंध व्यक्ति को बन्द कर देता है. यह नहीं समझना चाहिए। स्त्री–पुरूष, पति–पत्नी बनकर गृहस्थों को अपने लिए जेल खाना बना लें, इसका समर्थन नहीं है। विवाह को नारी पर प्रचीर बनाकर घिराने का हक नहीं हैं। इसलिए जैनेन्द्र जी ने विवाह को बन्धन न मानकर विवाहोपरान्त भी नारी के निजी व्यक्तित्व को स्वतंत्रता प्रदान करने की चेष्टा की हैं।

कमलेश्वर कृत डाक बंगला उपन्यास नारी जीवन की विडंबना की कहानी है। कमलेश्वर कहते है– नारी जीवन एक डाक बंगले को प्यार भी करते है और फिर उसे छोड देते हैं। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र इरा अपने जीवन में अनेक ठोकरें खाकर असाधारण बन जाती है। कोमलता की अपेक्षा जंगलीपन को अपनाती है। इरा के जीवन में अनेवाले सभी पुरूष उसके सौन्दर्य के साथ खिलवाड करते हैं बच्चे पैदा होने के बाद इरा को ठुकराकर चले जाते हैं। कमलेश्वर कहते है "भारत की हर कुँवारी माँ की कोख से पुरूषों के प्यार भरे पापों से जबरदस्ती संतानें पैदा है। उन संतानों को समाज ने पैगांबर का दर्जा दिया है किन्तु उनकी जन्मदात्री की कीमत चन्द चाँदी के टुकडों के सिवाय कुछ नहीं है।"

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अभिव्यक्त उक्त अनुभूतियों से मालूम होता है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में बौद्धिकता, पाश्चात्य प्रभावों एवं जीवन की कटु यथार्थ समस्याओं ने व्यक्ति के जीवन में कुण्ठा एवं निराशाजनक भावनाओं को जन्म दिया। आधुनिक जीवन में प्रमुख समस्या प्रेम और विवाहिक क्षेत्र में स्वतंत्र आचरण करने पर समाज व्यक्ति को हेय समझ कर कटु आक्षेप करता है और यौन स्वतंत्रता नहीं देता अतः समाज में अनैतिक समझे जाने वाले ये कार्य चोरी–छिपे होते रहते हैं।

संदर्भ :

1. सुखदा – जैनेन्द्र कुमार, पृ. 7
2. जैनेन्द्र कुमार साहित्य और समीक्षा, डॉ. रामरतन भटनागर, पृ. 119
3. काम प्रेम और परिवार, जैनेन्द्र कुमार, पृ. 64,65
4. डाक बंगला, कमलेश्वर, पृ. 46

Scanned with CamScanner

प्रधान संपादक
डॉ. प्रदीप कुमार सिंह (मुंबई)

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग साठये महाविद्यालय, विलेपार्ले (पूर्व) मुंबई -५७
ISBN--- 978-93-81980-28-6

संपादक
डॉ. अनिल सिंह (मुंबई)
डॉ. भगवती प्रसाद उपाध्याय (मुंबई)

शब्द सज्जा
श्री सतिश मथुलाल कनोजिया
श्री भरत अर्जुन परब

सरस्वती प्रकाशन
मंगल आशीष बिल्डिंग, लालचक्की रोड, उल्हासनगर, जि.
ठाणे, मुंबई
शाखा, ४९१ अल्लापुर, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

मूल्य - रू.९९५/-

प्रथम संस्करण ६-फरवरी-२०१५

आवरण - माहेश्वरी बंधु, दिल्ली

Scanned with CamScanner

अनामिका के साहित्य में स्त्री विमर्श

–टी. सुमति

जे. वी. आर. गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज,

सत्तुपल्ली, खम्मम

हिंदी साहित्य के समकालीन परिदृश्य में बहुचर्चित कवि–कथाकार आलोचक और स्त्री विमर्शकार अनामिका की चर्चा कई अर्थों में उल्लेखनीय है। बात कविता की हो, उपन्यास या स्त्रीवाद संबंधी विमर्श और व्याख्याओं की, अपने रचनाकर्म में अनामिका एक विनम्र, लोकधर्मी सजग स्वयंसेवक की भूमिका निभाती हैं। साथ ही अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति को हिंदी साहित्य के सीमित दायरे से बाहर निकाल ले आने की गहरी राजनीतिक सूझ उनमें हैं।

स्त्रीत्व का मानचित्र के विश्लेषण की अनामिका की पद्धति अनुगमनात्मक है। स्त्री–विमर्श की वर्तमान रूपरेखा तक पहुँचने से पहले वे उसकी जड़ों को टटोलती हैं और इस क्रम में पश्चिमी दार्शनिकों, वैदिक ग्रंथों से लेकर लोक साहित्य तक को खंगालती हैं।

बूब धरन के आवरण पृष्ठ पर लिखा है कि अनामिका निबंध लिखती हैं, अखबारों और पत्रिकाओं में स्तंभ लिखती हैं, कहानियाँ और उपन्यास रचती हैं, कविताओं और उपन्यासों का अनुवाद–संपादन करती हैं और अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन करती हैं। एक पब्लिक इंटलेक्चुअल के रूप में व्याख्यान देने से लेकर नारीवादी पब्लिक स्फियर में सक्रिय रहने तक वे और भी

Scanned with CamScanner

बहुत कुछ करती हैं। पर सबसे पहले और सबसे बाद में वे एक कवि हैं।

सबसे पहले और सबसे बाद में अर्थात मूलतः कवि अनामिका की रचनाओं का मुख्य संबोध्य स्त्रियाँ हैं। व्यक्तिगत दृश्यों को सामाजिकता में परिवर्तित करके चित्रित करने की उनकी शक्ति महत्वपूर्ण है। स्त्री की जिंदगी को उन्होंने मार्मिक बिंबों के द्वारा प्रस्तुत किया है। माँ, बहन, बेटी, पत्नी, सहेली, नानी और दादी जैसी अनेक भूमिकाएँ स्त्री निभा रही है। औरत की स्थिति को वे व्यंग्य भरे शब्दों में इसलिए चित्रित हैं, क्योंकि यह औरत की नियति बन गई है कि वह मारपीट करनेवालों से भी प्यार करने के लिए अभिशप्त है। अर्थात उनकी कविताएँ स्त्री की नियति, आशा–निराशा को व्यंजित करने में सक्षम है।

स्त्री विमर्श की दृष्टि से अनामिका के काव्य साहित्य पर कुछ उपलब्धियाँ निम्न प्रकार है–

फर्नीचर, अत्यक्षरी, एक औरत का पहला राजकीय प्रवास, सूली ऊपर सेज पिया की, चादर, महिला कलाकार आदि कविताओं की स्त्रियाँ शिक्षित और विचारशील है। परिवेश और स्थितियों में अंतर होते हुए भी उनकी पीड़ा और यातना समान है, मात्र प्रताड़ना का रूप बदला हुआ है।

चमक के अलावा, सेफटी पिन, एक नन्हीं सी धेनबिन, दासी, जुएं और गृहलक्ष्मी पर ग्यारह कविताएँ आदि में पारंपरिक भारतीय समाज की तथाकथित गृहलक्ष्मी की प्रताड़ना के अनेक प्रकार पाठक को विचलित करनेवाले ब्योरों से परिपूर्ण हैं।

होमवर्क, बीजगणित, ऋषिका जैसी कविताएँ–लिजलिजी भावुकता से दूर वात्सल्य की नई व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

Scanned with CamScanner

उनके औपन्यासिक चरित्रों में सुधीर कक्कड़, डॉ. अंसारी जैसे पुरुष पात्र भी हैं, जो स्त्री के प्रति क्रूर हैं, पर उनके चरित्रिक विकास को अनामिका ने सामाजिक, विकास की प्रक्रिया का एक अंग माना है। ये दोनों समाज की पुरुषवादी मानसिकता के परिचायक हैं। अवंतिका देवी व तारा का इनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण स्त्री की दया का नहीं, उदात्त संवेदनशीलता का परिचायिक है। यह भी स्त्री–चेतना की विकास यात्रा का एक प्रौढ़ मुकाम है। खद बढ़ाते हुए जल के थिरा जाने के बाद गंदगी जब तलछट में जमा होती है तो पानी स्वच्छ हो निखर आता है। इन अर्थों में तिनका तिनके पास तथा दस द्वारे का पिंजरा स्त्री चेतना की विकास यात्रा के प्रौढ़ मुकाम बनते हैं।

निष्कर्षत : अनामिका केवल कविता में ही नहीं, बल्कि अपने संपूर्ण लेखन में नारी–दृश्य की एक उदार सांस्कृतिक प्रवक्ता बनकर उभरी है। उनका स्वर नई सहस्राब्दी का स्वर है, जिसकी स्थिर हलचलों में बुलबुलाते कोमल सवाल अपनी तमाम फितरतों के साथ स्थापित विमर्शों को अस्थिर करते चले जाते हैं।

Scanned with CamScanner

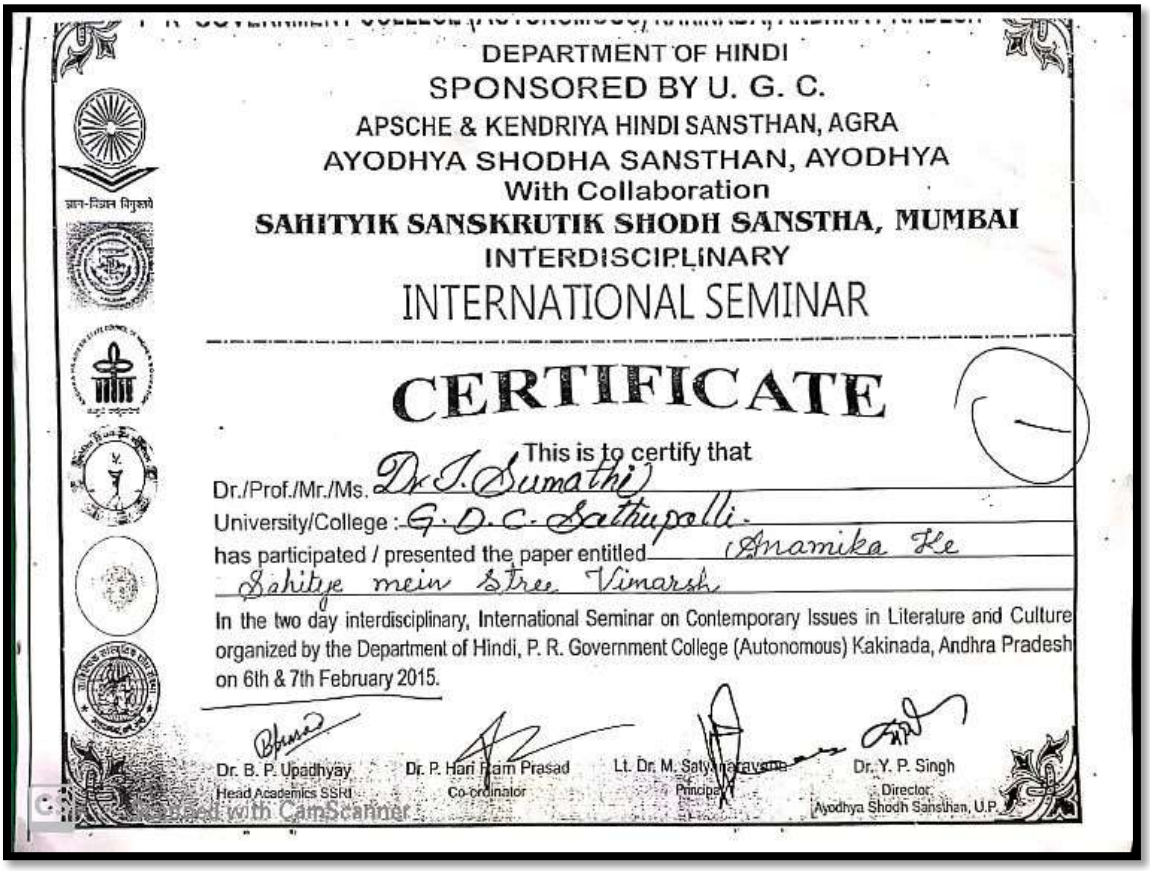

DEPARTMENT OF HINDI

SPONSORED BY U. G. C.

APSCHE & KENDRIYA HINDI SANSTHAN, AGRA

AYODHYA SHODHA SANSTHAN, AYODHYA

With Collaboration

SAHITYIK SANSKRUTIK SHODH SANSTHA, MUMBAI

INTERDISCIPLINARY

INTERNATIONAL SEMINAR

CERTIFICATE

This is to certify that

Dr./Prof./Mr./Ms. Dr. I. Sumathi

University/College : G. D. C. Sathupalli

has participated / presented the paper entitled Anamika Ke Sahitye mein Stree Vimarsh

In the two day interdisciplinary, International Seminar on Contemporary Issues in Literature and Culture organized by the Department of Hindi, P. R. Government College (Autonomous) Kakinada, Andhra Pradesh on 6th & 7th February 2015.

Dr. B. P. Upadhyay
Head Academics SSKI

Dr. P. Hari Ram Prasad
Co-ordinator

Lt. Dr. M. Satyanarayana
Principal

Dr. Y. P. Singh
Director
Ayodhya Shodh Sansthan, U.P.

Scanned with CamScanner